समरथ

अक्टूबर-दिसम्बर 2017 ◆ नई दिल्ली

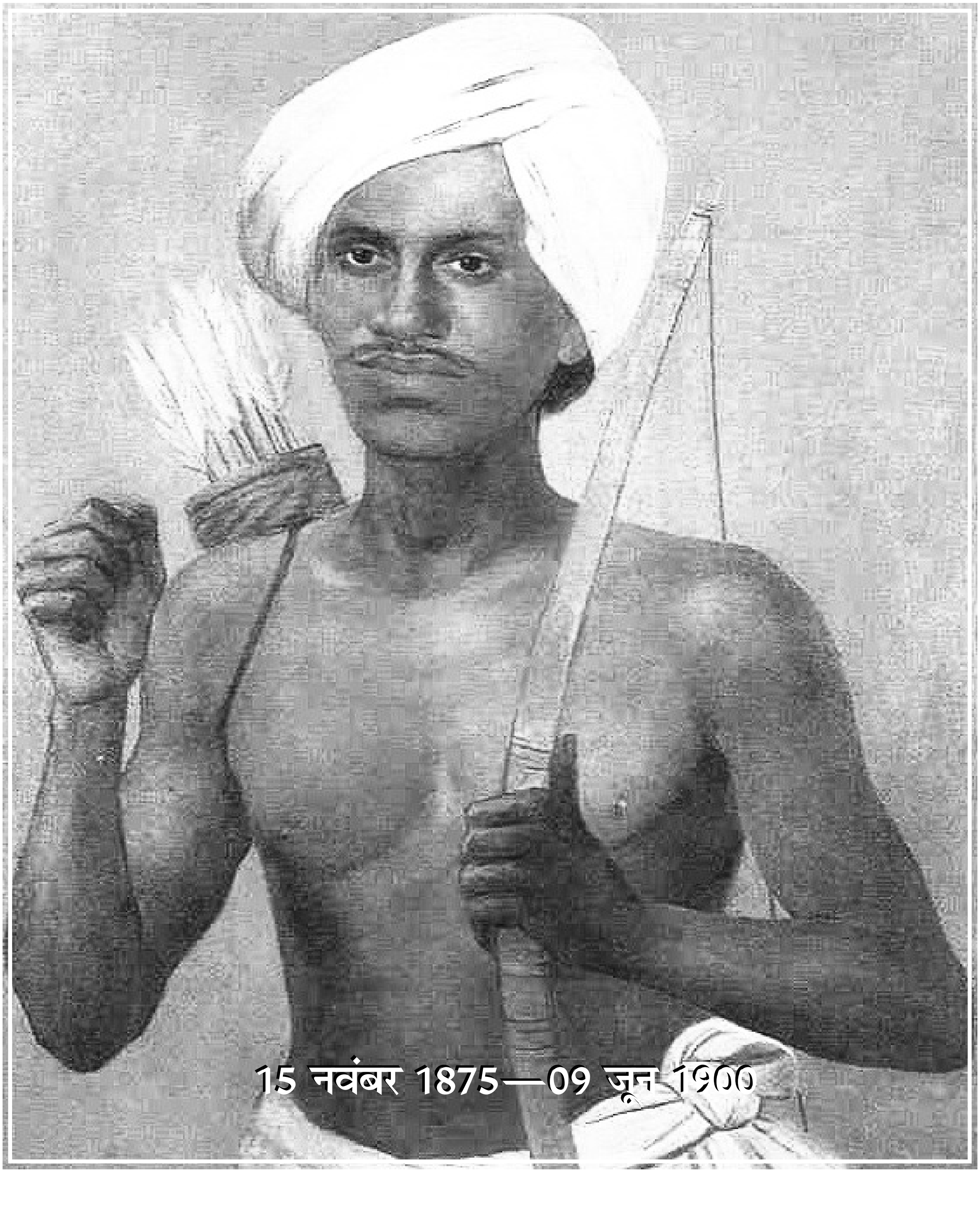

नाहि तो जनम नसाई

गुजरात के मुख्यमंत्री ने कुछ महीने पहले इंस्टीट्यूट ऑफ इन्फ्रास्ट्रक्चर टेक्नोलॉजी रिसर्च एंड मैनेजमेंट (आईआईटीआरएएम) के दीक्षांत समारोह में इंजीनियरिंग के छात्रों को संबोधित करते हुए भगवान राम के तीरों की तुलना इसरो के मिसाइलों से की थी और कहा था कि इसरो आज जो मिसाइलें तैयार कर रही है वो राम पहले ही दाग चुके थे। इस अवसर पर इसरो के स्पेस एप्लीकेशंस सेंटर के डायरेक्टर भी उपस्थित थे। मुख्यमंत्री ने इसी पर बस नहीं किया बल्कि मूलभूत ढांचों के विकास का उल्लेख करते हुए उन्होंने राम और उनके इंजीनियरों का हवाला दिया जिन्होंने भारत और श्रीलंका को एक पुल से जोड़ दिया था जिसके अवशेष कुछ लोगों के अनुसार आज भी समुंदर की तहों में पाए जाते हैं। उन्होंने इस पर भी आश्चर्य व्यक्त किया कि उस युग में हमारी टेक्नोलॉजी कितनी विकसित थी कि बड़े-बड़े पहाड़ एक जगज से दूसरी जगह सरलता पूर्वक विस्थापित किए जा सकते थे। उन्होंने यह भी कहा कि यही वो रामराज्य था जिसकी बात गाँधीजी करते थे और इसी की स्थापना के लिए प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी आज प्रयत्नरत हैं।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी भी मुंबई के एक अस्पताल में डॉक्टरों और चिकित्साकर्मियों की उपस्थिति में महाभारत के कर्ण और गणेश के हवाले से जेनेटिक साइंस और प्लास्टिक सर्जरी जैसे साइंस के आधुनिक क्षेत्रों में प्राचीन भारत की महान उपलब्धियों का बखान कर चुके हैं।

नि:संदेह आज भी बहुत से लोग पौराणिक कथाओं को ऐतिहासिक तथ्य मानते हैं और इस पर विश्वास करते हैं लेकिन वो ये बताने में असमर्थ हैं कि सिंधु घाटी की सभ्यता से लेकर आज तक के निरंतर इतिहास में इन महान उपलब्धियों का युग कब से कब तक था।

सत्य तो यह है कि एक काल्पनिक स्वर्ण युग के महान वैज्ञानिक कारनामों पर विश्वास, जिसे आस्था कहना ज्यादा उचित होगा, गलत ऐतिहासिक दृष्टिकोण और उस अवैज्ञानिक सोच का परिणाम है जो गलत बुनियादों पर निर्मित राष्ट्रवाद और हमारे धार्मिक ग्रंथों, महाकाव्यों और दास्तानों आदि को सही परिप्रेक्ष्य में न देखने का नतीजा है। दुर्भाग्य यह है कि ये अवैज्ञानिक दृष्टिकोण अब पाठ्यक्रम का हिस्सा बन रहा है और इससे ज्यादा दुर्भाग्य की बात यह है कि यह एक ऐसे देश में हो रहा है जहाँ आज से दो हजार साल पहले चार्वाक जैसे दार्शनिकों ने धार्मिक मान्यताओं को पूरी तरह रद्द करते हुए जीवन, सृष्टि और ब्रह्मांड आदि की उत्पत्ति के बारे में ऐसे आश्चर्यजनक और क्रांतिकारी विचार व्यक्त किए थे जिनमें आधुनिक 'बिग बैंग थ्योरी' की आरंभिक झलक देखी जा सकती है।

क्या हम इस तर्कहीन सोच, गलत ऐतिहासिक दृष्टिकोण और इस अंधविश्वास के साथ इक्कीसवीं सदी में वैशविक शक्ति बनने का सपना देख सकते हैं?

■ **साहिर लुधियानवी**

अक़ाएद[1] वहम हैं
मज़हब
ख़्याले ख़ाम[2] है साक़ी
अज़ल से[3]
ज़ेहने इन्साँ[4]
बस्तए अवहाम[5]
है साक़ी

वहाँ भेजा गया हूँ
चाक करने
पर्दा-ए-शब[6] को
जहां हर सुबह
के दामन पे
अक्से-शाम[7]
है साक़ी

ज़माना बर-सरे-पैकार[8] है
पुरहौल[9] शोलों से
तेरे लब पर
अभी तक
नग़्मा-ए-ख्य्याम[10]
है साक़ी

1.मान्यताएं, आस्थाएं, 2. अपरिपक्व धारणा 3. आदिकाल से, 4. इंसान का ज़ेहन, 5. भ्रम-ग्रस्त, 6. रात का पर्दा, 7. शाम का प्रतिबिम्ब, 8. संघर्षरत, 9. भयंकर, 10. उमर ख्य्याम के नगमे अर्थात् शराब और प्रेयसी का गुणगान।

गाँधीजी की आलोचना में दिक्कत नहीं है बिना सोची-समझी निंदा में है

गांधी के गांधी बनने का बड़ा कारण था अपनी आलोचना को शत्रुता न मानना। लेकिन आलोचक और निंदक में बड़ा फर्क है।

■ **अपूर्वानंद**

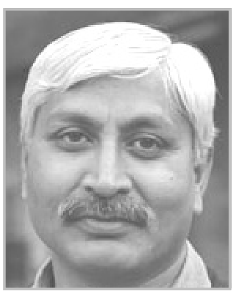

आज फिर महात्मा गांधी की चर्चा का दिन है। सोशल मीडिया से लेकर राजनीति की दुनिया तक तमाम मंचों पर होने वाली गांधी की चर्चा में इन दिनों मर्यादा की सीमाएं लांघती आलोचना भी आम हो चली है। कई बार इस आलोचनात्मक बहस के सिरे ऐसे झूठों से जुड़ते हैं जिन्हें तथ्य बताया जाता है। होना तो यह चाहिए था कि कुछ समय पहले प्रकाशित अंथोनी परेल की पुस्तक 'गांधियाना' से गांधी पर नए सिरे से बहस शुरू होती। या उसके कुछ वक्त पहले आई अजय स्कारिया की किताब 'अनकंडीशनल इक्वैलिटी : गांधीज़ रिलिजन ऑफ़ रेजिस्टेंस' से समानता, धर्म, प्रतिरोध जैसे मूल्यों पर उनके विचार के सूत्र लिए जाते। या उसके भी पहले मकरंद परांजपे की पुस्तक 'द डेथ एंड आफ्टर लाइफ ऑफ़ गांधी' से हम इस पर सोचना शुरू करते कि गांधी की मृत्यु के बाद, जो कि दरअसल उनकी हत्या थी, भारत ने गांधी को कैसे जीवित रखा।

आखिर परेल ने पूरा जीवन गांधी को समझने में लगा दिया है और उस पर भी वे जब उन पर कोई नई प्रस्तावना देते हैं तो दावे के साथ नहीं। अजय युवा अध्येता हैं और भारत के ग्रामीण और आदिवासी जीवन को उन्होंने अच्छी तरह देखा है। मकरंद साहित्य के अध्यापक और विद्वान हैं। ये सब गांधी को देखने के नए कोण पेश करते हैं।

गांधी ही सौ खंडों में हैं, अपने लेखों में, भाषणों, प्रार्थना सभा के वक्तव्यों और सबसे ज़्यादा अपनी चिट्ठियों में। यह सब पढ़ने में बहुत समय लगता है। तो क्या तब तक गांधी पर अपनी राय स्थगित रखी जाए?

किताबों से चर्चा शुरू करने में एक कठिनाई है, उन्हें पढ़ना पड़ता है। और उसमें वक्त लगता है। पढ़ना, अगर कायदे का हो तो इस दौरान पाठक की अनेक पूर्व मान्यताओं पर सवाल उठाता है, अगर उन्हें ध्वस्त न भी करता हो। इस प्रकार लिखने और पढ़ने के लिए एक प्रकार की विनम्रता

चाहिए जो बयानबाजी और फिर उस पर बहस में ज़रूरी नहीं।

प्राय: राजनेताओं में विद्वानों जैसा विनय मृगमरीचिका ही है। अक्सर वे किसी भी वस्तु या व्यक्ति को समझने से ज्यादा उसका इस्तेमाल करने में रुचि रखते हैं। लेकिन दुर्भाग्य यह कि सार्वजनिक चर्चा विद्वानों से अधिक इन नेताओं के माध्यम से ही शुरू होती है। इसलिए उसको नज़रअंदाज करने की सुविधा हमारे पास नहीं।

गांधी के साथ एक दिक्कत भारत में यह है कि उन पर बात करने के लिए किसी तैयारी की ज़रूरत नहीं समझी जाती। मुझसे मेरे एक पुराने कम्युनिस्ट मित्र ने शिकायत की कि तीस जनवरी पर उन्हें बोलने को नहीं बुलाया जाता क्योंकि वे गांधी की आलोचना करते हैं। मैंने उनसे पूछा कि गांधी के बारे में उन्होंने अपनी धारणा कैसे बनाई। क्या उन्होंने गांधी के बारे में कुछ भी पढ़ा है? इसका उत्तर नकारात्मक था लेकिन उससे ज्यादा चिंता की बात यह थी कि उन्हें यह शर्त बेतुकी जान पड़ी। आखिर उन्होंने भूपेश गुप्ता और हीरेन मुख़र्जी को पढ़ रखा था और उनके जरिए वे गांधी को जितना जानते थे, वह काफी होना चाहिए था। लेकिन हीरेन मुखर्जी तो मार्क्सवादी होने के बावजूद या उसके साथ-साथ स्वयं को गांधी का प्रशंसक कह सकते थे और यही ईएमएस नंबूदरीपाद के लिए भी सच था।

कम्युनिस्टों और गांधी में एक द्वंद्वात्मक रिश्ता था। लेकिन फिर भी एस.ए. डांगे, हीरेन मुखर्जी या ई.एम.एस. नंबूदरीपाद ने गांधी पर सुचिंतित पुस्तकें लिखना आवश्यक समझा। बाद के कम्युनिस्टों के लिए गांधी को जानना उतना ज़रूरी नहीं रह गया था।

गांधी धीरे-धीरे एक अफवाह में बदल गए। जैसे अफवाहों पर यकीन कर लेने के अलावा चारा नहीं रहता और उन्हें सत्य की तरह प्रचारित करने में भी, उसी तरह गांधी की छवियां भी प्रचारित की गई हैं। और इन सबमें गांधी का सरलीकरण है।

गांधी के साथ तीन तरह का व्यवहार हुआ : उनकी हत्या के बाद भारतीय राज्य ने उनका पूरी तरह राजकीयकरण कर दिया। यह गांधी जैसे व्यक्तित्व के लिए बड़ी विडंबना की बात थी। उनकी हत्या की शर्म से उबरने के लिए प्राय: उसके कारण पर बात करना बंद कर गांधी को एक अजातशत्रु संत की तरह प्रचारित किया गया। तीसरे, उनके राजनीतिक पक्ष को पूरी तरह से ओझल करके उन्हें एक धार्मिक व्यक्तित्व या संत की प्रतिष्ठा दे दी गई।

गांधी के साथ हमारा रिश्ता एक प्रकार के संभ्रम का है। आप उनका आदर करने को बाध्य हैं बिना उन्हें समझे। वे आलोचना से परे हैं और उनकी सिर्फ पूजा की जा सकती है। उनके शिष्य और मित्र जवाहरलाल नेहरू ने युवा रिचर्ड एटनबरो को चेतावनी दी थी कि वे अपनी फिल्म में उन्हें देवता की तरह चित्रित न करें।

बड़े लोगों के बारे में यह उक्ति ठीक बैठती है कि पूर्ण हमेशा अंशों के योग से बड़ा होता है। गांधी के जीवन के अनेक अंश ऐसे हैं जिन पर आलोचनात्मक तरीके से बात की जा सकती है। वर्णाश्रम के प्रति उनका रुख, औरतों की राजनीतिक आंदोलनों में भागीदारी को लेकर अनेक स्थलों पर उनका संकोच, दक्षिण अफ्रीका में आरंभ में अफ्रीकियों के प्रति उनका नजरिया, भारत लौटने पर ब्रिटिश सेना के लिए भर्ती की मुहिम चलाने का उनका निर्णय, इन सब पर आलोचना होनी चाहिए। एक मत यह है कि खिलाफ़त की हिमायत करके और भारत में उस आंदोलन का प्रचार करके उन्होंने ही आगे राजनीति और धर्म के घालमेल के लिए आधार बनाया। लेकिन जैसा पहले निवेदन किया गया, पूर्ण हमेशा अंशों के योग से बड़ा होता है। तो गांधी को सिर्फ इन हिस्सों में ही नहीं समझा जा सकता।

गांधी से एक बार अफ्रीका के लोगों के लिए संदेश देने का अनुरोध किया गया। उत्तर में उन्होंने कहा, मेरा जीवन ही मेरा संदेश है। गांधी की इस उक्ति को अहंकारपूर्ण कहा जा सकता है। लेकिन वे सिर्फ यह कहना चाहते थे कि उनका संपूर्ण जीवन प्रयोगों की एक श्रृंखला है। प्रयोग हमेशा सफल नहीं होते। प्रयोग जिस पूर्व धारणा से शुरू किए जाते हैं, वह प्रयोग के कर्म में पूरी तरह निरस्त हो सकती है या बदल जा सकती है। जैसे गांधी का यह कहने से शुरू करना कि ईश्वर ही सत्य है और अंत में यहां पहुंचना कि सत्य ही ईश्वर है।

लेकिन प्रयोगकर्ता को यह सुविधा नहीं है कि वह अपनी प्रतिपत्ति पर संदेह करते हुए अपना प्रयोग करे। पहले उस पर विश्वास करना होता है। भले ही उसका विरोध उस समय की बड़ी से बड़ी प्रतिभा ही क्यों न कर रही हो। भारत लौटने के बाद तिलक और एनी बेसेंट जैसी शख्सियतों के विरोध के बावजूद अंग्रेज़ी सेना में भारतीयों की भर्ती की उनकी जिद को इसी तरह समझा जा सकता है।

गांधी के गांधी बनने का बड़ा कारण था अपनी आलोचना को शत्रुता न मानना। आश्चर्य नहीं कि उनके सबसे प्रिय लोगों में रवींद्रनाथ टैगोर और नेहरू उनके नि:संकोच आलोचक भी थे। लेकिन आलोचक और निंदक में फर्क है। गांधी का अपने उत्तर जीवन में प्राय: दूसरे किस्म के लोगों से ही सामना हुआ है।

ताजमहल और विघटनकारी राजनीति के खेल

■ राम पुनियानी

भारत, प्राकृतिक सुंदरता से भरपूर तो है ही, यहां मानव-निर्मित चमत्कारों की संख्या भी कम नहीं है। ये न केवल भारत वरन पूरी दुनिया से पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करते रहे हैं। अचम्भित कर देने वाली ऐसी ही इमारतों में शामिल है ताजमहल, जिसका निर्माण मुगल बादशाह शाहजहां ने अपनी प्रिय पत्नी मुमताज़ महल की याद में करवाया था। ताज को दुनिया के सात आश्चर्यों में गिना जाता है और इसे यूनेस्को द्वारा विश्व धरोहर स्थल का दर्जा दिया गया है।

कवि गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने ताजमहल को ''काल के कपोल पर रूकी हुई अश्रु की एक बूंद'' बताया था। ताजमहल देखने दुनियाभर से पर्यटक आते रहे हैं और इसमें कोई संदेह नहीं है कि ये भारत का सबसे बड़ा आकर्षण है। परंतु उत्तरप्रदेश की योगी सरकार को इस सबसे कोई लेना-देना नहीं है। कुछ हफ्तों पहले, सत्ता में अपने छह माह पूरे होने के मौके पर योगी सरकार ने राज्य में पर्यटन के संबंध में एक पुस्तिका प्रकाशित की। पुस्तिका का शीर्षक था ''उत्तरप्रदेश पर्यटन-अपार संभावनाएं''। इसमें जिन पर्यटन स्थलों की चर्चा की गई थी, उनमें गोरखनाथ पीठ, जिसके मुखिया स्वयं आदित्यनाथ हैं, सहित कई स्थल शामिल थे। इस पुस्तिका का फोकस धार्मिक पर्यटन पर था। सबसे आश्चर्यजनक बात यह थी कि उत्तरप्रदेश का सबसे प्रसिद्ध पर्यटन स्थल ताजमहल इस पुस्तिका से गायब था।

मुख्यमंत्री बनने के बाद योगी ने कहा था कि ताजमहल, भारतीय संस्कृति का हिस्सा नहीं है और विदेशी अतिथियों को ताजमहल की प्रतिकृति भेंट करने की परंपरा समाप्त होनी चाहिए। उसकी जगह गणमान्य विदेशी अतिथियों को गीता या रामायण की प्रतियां भेंट की जानी चाहिए। योगी के अनुसार ये दोनों पुस्तकें भारतीय संस्कृति की प्रतीक हैं। ताजमहल पर इस विवाद ने योगी सरकार के साम्प्रदायिक चेहरे

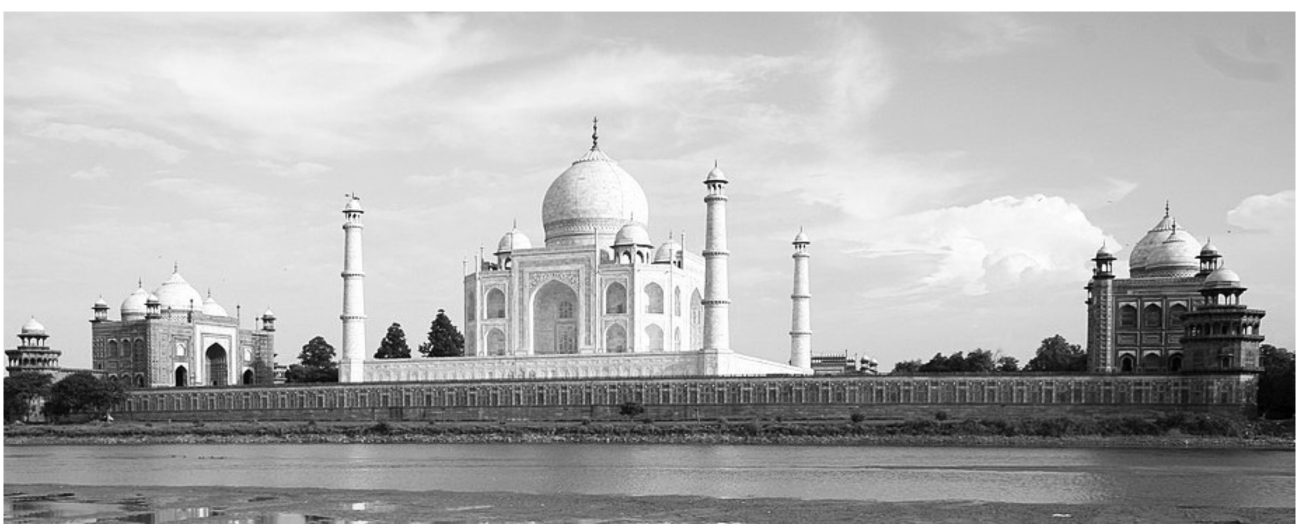

का पर्दाफाश कर दिया। जब इस मुद्दे पर सरकार को मीडिया में आलोचना का सामना करना पड़ा तब एक मंत्री ने कहा कि ताजमहल भारतीय विरासत का हिस्सा है परंतु पुस्तिका में इसकी चर्चा इसलिए नहीं की गई है क्योंकि उसमें केवल ऐसे पर्यटन स्थल शामिल किए गए हैं, जिनका प्रचार-प्रसार किए जाने की आवश्यकता है। उन्होंने यह भी कहा कि ताजमहल के लिए सरकार ने अलग से धन आवंटित किया है और आगरा में अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा बनाए जाने का प्रस्ताव है।

इस मामले में भाजपा के शिविर से कई अलग-अलग तरह की बातें कही जा रही हैं। कुछ लोग कह रहे हैं कि ताज एक हिन्दू मंदिर है। कुछ अन्य का कहना है कि वह कोई बहुत महत्वपूर्ण स्मारक नहीं है तो कुछ लोग यह भी कह रहे हैं कि वह भारत की गुलामी का प्रतीक है। भाजपा नेता संगीत सोम ने इस मुद्दे पर जो कहा वह मुस्लिम बादशाहों द्वारा बनाई गई इमारतों के संबंध में भाजपा के दृष्टिकोण को प्रतिबिम्बित करता है। उन्होंने कहा, ''कई लोगों ने इस बात पर दुःख व्यक्त किया कि राज्य सरकार की पर्यटन संबंधी पुस्तिका में से ताजमहल का नाम हटा दिया गया। हम किस इतिहास की बात कर रहे हैं? क्या उस इतिहास की, जिसमें ताजमहल के निर्माता ने अपने पिता को जेल में डाल दिया था?...क्या हम उस इतिहास की बात कर रहे हैं जिसमें इस स्मारक के निर्माता ने उत्तरप्रदेश और भारत से हिन्दुओं का सफाया कर दिया था। यह दुखद और दुर्भाग्यपूर्ण है कि इस तरह के आततायी शासक अब भी हमारे इतिहास का हिस्सा हैं।'' यहां यह महत्वपूर्ण है कि ताजमहल देखने आने वाले पर्यटकों की संख्या में पिछले कुछ वर्षो से कमी आ रही है और ताजमहल को एक पर्यटक स्थल के रूप में बढ़ावा दिए जाने की आवश्यकता है।

प्रश्न यह है कि ताजमहल का नाम सरकारी पुस्तिका में से क्यों हटाया गया। योगी, ताज के बारे में जो कुछ कहते आए हैं उससे ऐसा लगता है कि वह ताजमहल को नापसंद करते हैं। ताज का निर्माण एक ऐसे व्यक्ति ने करवाया था जिसे हिन्दुत्व की विचारधारा हमलावर मानती है। भारतीय संस्कृति की गांधी जैसे राष्ट्रवादियों द्वारा प्रस्तुत परिभाषा, योगी और हिन्दुत्व की विचारधारा के बिलकुल विपरीत है। भाजपा और हिन्दुत्ववादियों के लिए हिन्दू संस्कृति ही भारतीय संस्कृति है।

इससे भी आगे बढ़कर, कुछ संघी और हिन्दुत्ववादी कह रहे हैं कि ताजमहल एक हिन्दू मंदिर है और इसका नाम तेजो महालय था! यह दावा इतिहास और तथ्यों की कसौटी पर खरा नहीं उतरता। शाहजहां के 'बादशाहनामा' से यह साफ है कि ताज का निर्माण शाहजहां ने ही करवाया था। उन दिनों भारत आए एक यूरोपीय प्रवासी पीटर मुंडी ने लिखा कि बादशाह शाहजहां अपनी प्रिय पत्नी की मृत्यु से दुख के सागर में डूबे हुए हैं और उनकी याद में एक शानदार मकबरा बनवा रहे हैं। फ्रांसिसी जौहरी टेवरनियर, जो उस समय भारत में थे, ने भी यही बात कही। शाहजहां की हिसाब किताब की बहियों में ताजमहल के निर्माण में होने वाले खर्च की चर्चा है, जिसमें संगमरमर खरीदने और मजदूरी आदि पर व्यय शामिल है। ताज को शिवमंदिर बताए जाने के दावे का एकमात्र आधार यह है कि ताज जिस ज़मीन पर बना है उसे शाहजहां ने राजा जयसिंह से खरीदा था। यहां यह महत्वपूर्ण है कि जयसिंह एक वैष्णव थे और किसी वैष्णव राजा से यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि वह शिव का मंदिर बनाएगा।

दरअसल, ताजमहल की महत्ता को कम करने का प्रयास, भारतीय इतिहास के पुनर्लेखन की हिन्दुत्ववादी परियोजना का हिस्सा है। इस परियोजना के अंतर्गत इतिहास की सांप्रदायिक व्याख्या की जा रही है और तथ्यों को तोड़ा-मरोड़ा जा रहा है। दावा तो यहां तक किया जा रहा है कि राणा प्रताप और अकबर के बीच हुए हल्दी घाटी के युद्ध में राणा प्रताप की विजय हुई थी। हल्दी घाटी का युद्ध, सत्ता के लिए लड़ा गया था, धर्म की खातिर नहीं। हम सब को पता है कि अकबर और राणा प्रताप के सहयोगियों में हिन्दू और मुसलमान दोनों शामिल थे। न तो अकबर इस्लाम के रक्षक थे और ना ही राणा प्रताप हिन्दू धर्म की ध्वजा उठाए हुए थे। वे दोनों अपने-अपने साम्राज्यों का विस्तार करना चाहते थे।

ऐसा लगता है कि ताजमहल और मुस्लिम राजाओं द्वारा बनाई गईं अन्य इमारतें, सांप्रदायिक शक्तियों की आंखों में खटक रही हैं। अब तक ताज को हिन्दू मंदिर बताए जाने का प्रयास किया जा रहा था। अब, जब कि इस विचारधारा में रचे-बसे लोग सत्ता में हैं, ताजमहल को भारतीय इतिहास से मिटाने का प्रयास किया जा रहा है और भारत की संस्कृति में उसे कोई स्थान न दिया जाए, ऐसी कोशिश हो रही है। जिस तरह हिन्दुत्ववादियों ने ताजमहल को उत्तरप्रदेश पर्यटन की पुस्तिका से गायब कर दिया उसी तरह वे शायद मुसलमानों को भी समाज के हाशिए पर धकेल देना चाहते हैं। क्या इन लोगों का अगला निशाना लाल किला होगा जहां से भारत के प्रधानमंत्री स्वतंत्रता दिवस पर भाषण देते आए हैं?

ताजमहल और इस तरह की दूसरी ऐतिहासिक और पुरातात्विक इमारतें और ढांचे, भारतीय संस्कृति का हिस्सा हैं। इनका संरक्षण और संवर्धन आवश्यक है ताकि भारत की मिलीजुली संस्कृति को बढ़ावा दिया जा सके।

साभार

(अंग्रेजी से हिन्दी रूपांतरण अमरीश हरदेनिया)

यह समाज और इसका वातावरण बच्चों के अनुकूल नहीं है

■ **सुभाष गाताडे**

यह 'अच्छे स्पर्श' और 'बुरे स्पर्श' की सरलीकृत बायनरी से आगे बढ़ने का वक्त है। बच्चों के लिए न विशेष अदालतें हैं, न काउंसलिंग के इंतज़ाम हैं, न ही सुरक्षित वातावरण जिसमें वह पल-बढ़ सकें।

एक ऐतिहासिक फैसले में तमिलनाडु के मदुरई जिले में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश शंनमुगसुंदरम ने स्कूल के प्रधानाचार्य अरोक्यासामी को 91 बच्चों एवं बच्चियों के साथ यौन अत्याचार के मामले में दोषसिद्ध घोषित करते हुए उसे 50 साल से अधिक की सजा दी।

खबरों के मुताबिक जज ने उसे भारतीय दंड विधान, अनुसूचित जाति एवं जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम और तमिलनाडु महिला उत्पीड़न विरोधी अधिनियम जैसे कानूनों के तहत दोषी पाया।

पब्लिक प्रासिक्यूटर पी परीमालादेवी के मुताबिक यह 'देश में पहली घटना है' जब अनुसूचित जाति एवं जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम के लिए बने स्पेशल कोर्ट ने किसी अपराधी को पचास साल की सजा दी और जुर्माना लगाया।

गौरतलब है कि मदुरई जिले के पोथुम्बु के सरकारी हाईस्कूल के अपने कार्यकाल में अरोक्यासामी ने 91 छात्रों को (जिनमें लड़के और लड़कियां दोनों शामिल थे) को हवस का शिकार बनाया था और इस मामले का खुलासा तभी हुआ जब पंजू नामक व्यक्ति की बेटी (जो अब इस दुनिया में नहीं है) ने उसके साथ हो रही ज्यादती का विरोध किया और अरोक्यासामी के अपराधों का भंडा फूट गया।

स्कूलों के अंदर यौन अत्याचार की बढ़ती घटनाओं के खुलासे की पृष्ठभूमि में यह ऐतिहासिक फैसला सुकून दे सकता है, अलबत्ता इस खबर पर जिन दिनों आप सभी की निगाह पड़ रही होगी, तभी पानीपत का मिलेनियम स्कूल (जिसकी देश में तमाम शाखाएं हैं तथा जहां सालभर की छात्रों की फीस डेढ दो लाख है) में छात्रा के साथ हुई यौन अत्याचार की घटना, जयपुर के अस्पताल में फिलवक्त कोमा में पड़ी छात्रा (जिसके साथ दो अध्यापकों ने कई माह तक अत्याचार किया था) गुड़गांव के प्रद्युम्न आदि तमाम खबरें आप की निगाह से गुजरी होंगी।

मुमकिन है कि गुड़गांव की 12 साल की अनामिका (बदला हुआ नाम) की खबर भी आपने देखी हो जो सात साल तक अपने ही पिता के हाथों यौन अत्याचार का शिकार होती रही। अपने साथ हो रही इस ज्यादती का एहसास उसे तब हुआ जब उसे 'अच्छा स्पर्श', बुरा स्पर्श' आदि के बारे में स्कूल में बताया गया।

या आदिवासी बच्चों के लिए बने आवासीय विद्यालयों में छात्राओं-छात्रों के साथ होने वाली ऐसी घटनाएं (जो आम तौर अख़बारों में स्थान तक नहीं हासिल कर पातीं) आप ने कहीं सोशल मीडिया पर देखी हो।

दरअसल स्कूल हो या अपने घर का आंगन कहीं भी बच्चे सुरक्षित नहीं हैं और यही बार-बार देखने में आता है कि अधिकतर बच्चे उन्हीं लोगों द्वारा यौन अत्याचार का शिकार होते हैं जिन्हें वे जानते हैं या जो उनके 'आत्मीय' कहलाते हैं।

याद करे कि कांग्रेस के नेतृत्व वाली यूपीए की सरकार के दिनों में—जब रेणुका चौधरी भारत सरकार का समाज एवं बाल कल्याण मंत्रालय संभाल

रही थीं तब मंत्रालय के तहत संपन्न अध्ययन 'स्टडी आन चाइल्ड एब्यूज इंडिया 2007' ने ही इस बात का खुलासा किया था कि 53 प्रतिशत बच्चे यौन हिंसा के शिकार होते हैं, और उनके पीड़कों में अधिकतर मामलों में उनके करीबी कहलाने वाले लोग ही शामिल होते हैं।

ऐसे लोग जिन पर बच्चे ही नहीं उनके माता-पिता भरोसा करते हैं। महिला एवं बाल विकास मंत्रालय के अध्ययन में उजागर यह तथ्य भी रेखांकित हुआ था कि जहां 53 फीसदी बच्चे जीवन में कभी न कभी अत्याचार का शिकार होते हैं, वहीं महज छह फीसदी बच्चे इसके बारे में शिकायत करते हैं।

अर्थात अधिकतर मामले दबे ही रह जाते हैं। यह भी सोचने का मसला है कि अत्याचारी इस कदर बेखौफ होकर इसे कैसे अंजाम देता है।

दरअसल वह जानता होता है कि बच्चा इसके बारे में बोलेगा नहीं, और अगर बोलेगा तो उस पर कोई यकीन नहीं करेगा और अगर यकीन भी किया तो समुदाय के अन्य सदस्य विभिन्न कारणों से—फिर चाहे 'परिवार की इज्जत' का सवाल हो या 'बच्चे के भविष्य' की चिंताएं हों या अत्याचारी की आर्थिक-सामाजिक शक्ति का डर हो—उसे उठाएंगे नहीं और मान लें कि कोई कदम उठाया भी गया तो भी अदालती प्रक्रियाओं में इतनी खामियां हैं कि उसे लाभ मिल जाएगा।

कहा जा सकता है कि इस मसले पर पनपे आक्रोश का ही नतीजा था कि बाल यौन अत्याचार के मामलों को भारतीय दंड विधान के तहत देखने को लेकर सवाल उठे थे, जो वह वयस्क एवं बच्चों में फर्क नहीं करता था और न ही बच्चों के खिलाफ संभव सभी किस्म के यौन अत्याचार इसमें शामिल नहीं थे और ऐसे मामलों से निपटने के लिए, एक विशेष कानून बनाने की बात हुई थी और मई 2012 में ही राज्यसभा एवं लोकसभा ने प्रोटेक्शन ऑफ चिल्ड्रेन फ्रॉम सेक्युअल आफेन्सेस एक्ट, 2012 पारित कर दिया था जिसका मकसद बताया गया था कि यौन अत्याचार एवं शोषण से बच्चों की रक्षा के लिए कानूनी प्रावधान मजबूत किए जाएं।

यह विडंबना ही है कि इतनी बड़ी मानवीय त्रासदी (जब पचास फीसदी बच्चे जीवन में कभी न कभी यौन हिंसा का शिकार होते हैं, जिसमें महज लड़कियां नहीं, लड़के भी शिकार होते हैं) का एहसास आज भी बहुत कम है।

लड़कों के साथ अतिरिक्त दिक्कत यह होती है कि पुरुषत्व की जो धारणा बालपन से ही उनके मन में भर दी जाती है, उसमें कई बार वह चुप ही रह जाते हैं।

कुछ समय पहले 'ह्यूमन राइटस वाच' ने 82 पेज की एक रिपोर्ट 'ब्रेकिंग द साइलेंस : चाइल्ड सेक्सुअल एब्यूज इन इंडिया' जारी की थी, और उसने फिर एक बार 2007 के अध्ययन के निष्कर्षों को ही गोया रेखांकित किया था।

रिपोर्ट ने इस विस्फोटक तथ्य को उजागर किया था कि किस तरह भारत में बाल यौन अत्याचार घरों, स्कूलों एवं बच्चों की देखरेख के लिए बनी आवासीय सुविधाओं में आम है।

किस तरह सरकार की मौजूदा नीतियां/प्रतिक्रिया (बच्चों को यौन अत्याचार से बचाने और पीड़ितों का इलाज करने में) बुरी तरह नाकाफी हैं।

किस तरह तमाम बच्चों को पीड़ादायी मेडिकल परीक्षणों और पुलिस तथा अन्य अधिकारियों की तरफ से दूसरी बार दुर्व्यवहार का शिकार बनाया जाता है, जो बच्चों की बात पर यकीन नहीं करना चाहते।

रिपोर्ट की खासियत यह कही जा सकती है कि उसे तैयार करने के लिए परिमाणात्मक विश्लेषण के बजाय केस स्टडी का सहारा लिया गया ताकि बाल यौन अत्याचार मामले में सरकारी प्रणालियों की पड़ताल की जा सके।

रिपोर्ट का साफ निष्कर्ष था कि समस्या को संबोधित करने की सरकारी कोशिशें (जिसमें नए कानून की बात भी शामिल है) असफल होंगी, जब तक हम बचाव करने वाली प्रणालियों को विकसित नहीं करेंगे और न्याय प्रणाली को सुधारेंगे नहीं ताकि अत्याचार की हर घटना की रिपोर्ट मिले और अत्याचारियों को दंड सुनिश्चित किया जा सके।

रिपोर्ट में कुछ केस स्टडीज उदाहरण रूप में ही प्रस्तुत किए गए थे। उदाहरण के लिए 16 साल की नेहा के साथ गांव के दो लोगों ने अत्याचार किया और जब वह थाने पहुंची तो पुलिस वालों ने उसकी रिपोर्ट लिखने से साफ मना कर दिया, तो वहीं 12 वर्षीय कृष्णा की शिकायत लिखने में मना करते हुए पुलिस ने उसे 12 दिन की गैरकानूनी हिरासत में रखा।

ध्यान रहे बच्चों के खुले आकाश में विचरण करने के लिए ऐसी तरह-तरह की बंदिशें महज सुदूर इलाकों में ही मौजूद नहीं है। ऐसी बेरुखी चौतरफा उपर से नीचे तक व्याप्त है।

जैसे पिछले साल जहां एक तरफ बाल अत्याचारों के प्रति जागरूकता पैदा करने के लिए पोस्टरों के इस्तेमाल की बात हो रही थी, वहीं दूसरी तरफ यह सच्चाई भी सामने आ रही थी कि खुद राजधानी में प्रोटेक्शन आफ चिल्डेन फ्रॉम सेक्सुअल आफेन्सेस एक्ट के तहत गठित विशेष अदालत को समाप्त किए जाने को लेकर समाजसेवियों को अदालत

का दरवाजा खटखटाना पड़ रहा था और अदालत को पूछना पड़ा था कि प्रशासन स्पष्ट करे कि आखिर उसने प्रोटेक्शन ऑफ चिल्डेन फ्रॉम सेक्सुअल आफेन्सेस एक्ट के तहत गठित विशेष अदालत को क्यों समाप्त किया।

इतना ही नहीं सूचना अधिकार के तहत मांगी गयी जानकारी में इस बात का भी खुलासा हुआ था कि ऐसी गठित विशेष अदालतों पर मानवाधिकारों के उल्लंघन/नशीली दवाओं/सौंदर्यप्रसाधन अधिनियम आदि के तहत आने वाले मामलों का भी बोझ डाला गया था।

आज जब मीडिया में बाल अत्याचार की घटनाएं सुर्खियों में है फिर एक बार यह सवाल लाजिम हो उठता है कि आखिर ऐसी घटनाओं के दोहराव को रोकने के लिए क्या किया जाए?

एक सुझाव यह आ सकता है कि सेक्स एजुकेशन को स्कूली पाठयक्रम में शामिल किया जाए, जिसके बारे में मौजूदा सरकार की राय बिल्कुल अलग दिखती है।

याद करे कि वर्ष 2014 में तत्कालीन केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्री हर्षवर्धन ने स्कूलों में ऐसी किसी शिक्षा पर पाबंदी लगायी।

इतना ही नहीं वर्ष 2016 में नई शिक्षा नीति के लिए सिफारिशें तय कर रहे पैनल को यह निर्देश दिया कि वह सरकारी दस्तावेज से 'सेक्स' और 'सेक्सुअल' शब्द हटा दें क्योंकि वह लोगों को 'आहत' कर सकती है।

स्पष्ट है कि भारत में अभी भी सरकार द्वारा सूत्रबद्ध यौनशिक्षा का स्कूलों में अभाव है।

उम्मीद की जानी चाहिए कि सरकार इस मामले में विकसित देशों के अनुभवों पर गौर करेगी और इस मसले को 'नैतिक प्रहरी' के तौर पर नहीं देखेगी और पुनर्विचार करेगी।

दूसरा, सुझाव यह भी आ सकता है कि कम से कम बच्चों को 'अच्छा स्पर्श', 'बुरा स्पर्श' आदि के बारे में गंभीरता से शिक्षा दी जाए ताकि वह उनके साथ हो सकने वाली प्रताडना से बच सकें।

ऐसे प्रचार पोस्टर जिनके जरिए बच्चों को यह समझाने की कोशिश की गई थी कि वह अपने आप को अनुचित व्यवहार से कैसे बचायें और खतरे की स्थिति में किससे संपर्क करें।

'स्वयं को सुरक्षित रखने के चतुर उपाय', 'तुम्हें हर समय सुरक्षित रहने का अधिकार है', आदि शीर्षकों से बने यह पोस्टर सरल भाषा में बच्चों को सचेत करते दिख रहे थे।

निश्चित तौर पर यह योजना बाल अधिकारों के लिए कार्यरत विशेषज्ञों की सलाहों के अनुरूप ही थी जिसमें उनकी तरफ से यह बात रखी जाती रही है कि किस तरह बच्चों को 'अच्छे स्पर्श' और 'बुरे स्पर्श' के बारे में बताना जरूरी है।

एक अंतरराष्ट्रीय संस्था ने तो इस मसले पर पहले से प्रचार सामग्री भी तैयार की है, जो अभिभावकों, शिक्षकों को स्पर्श से उपजती चुनौतियों से वाकिफ कराती हैं।

इस संदर्भ में यह सवाल समीचीन हो उठता है कि क्या ऐसे सुझावों की बहुत उपयोगिता है?

इसमें दो तरह की दिक्कतें हैं—एक व्यावहारिक दिक्कत, कई बच्चे-अनामिका की तरह ऐसी उम्र में अत्याचार का शिकार होते हैं, जिन्हें आप कैसे शिक्षित कर सकते हैं।

दूसरा, इस पर अत्यधिक जोर कहीं पीड़ित को ही उसके अत्याचार के लिए जिम्मेदार मानने तक पहुंच जाता है। सोचने का मसला यह है कि स्पर्श के नियम सिखाने तक इस मामले को न्यूनीकृत/रिड्यूस करके दरअसल कहीं न कहीं हम आत्मीय कहे गए संबंधों में भी जो सत्ता सम्बन्ध व्याप्त होते हैं, उसकी गंभीरता और व्यापकता की अनदेखी तो नहीं कर रहे हैं।

कुछ न होने से कुछ होता रहे यह बात अपने आप में अच्छी है, ऐसी बात अक्सर कही जाती है। उसी तर्ज पर कहें तो स्पर्श के अच्छे-बुरे होने की बात बच्चे जान जाएं, वह ठीक ही है।

मगर यह सोचने की आवश्यकता है कि ऐसे कदम जिनका दर्शनीय मूल्य ज्यादा होता है, वह शेष समाज की उस विराट असफलता पर परदा डाल देते हैं, जो बच्चों की सुरक्षा को सुनिश्चित करने के सुविचार और जमीनी यथार्थ के गहरे अंतराल को सामने लाता है।

न विशेष अदालतें मौजूद हैं, न बच्चों के काउंसलिंग के इंतजाम मौजूद हैं और न ही एक सुरक्षित वातावरण जिसमें वह पल बढ़ सकें।

सबसे बढ़कर बड़े बच्चे या बच्चियां—जिन्हें इस बात का बोध भी रहता है, लेकिन परिवार या समाज के अन्दर सत्ता सम्बन्ध ऐसे बने होते हैं कि वह बोल नहीं पाते।

मदुरई के पोथुम्बु के सरकारी स्कूल का प्रधानाचार्य जब 91 बच्चे-बच्चियों को समय-समय पर अपनी हवस का शिकार बना रहा था, तब क्या वह बात उसके सहयोगियों या अन्य लोगों को पता नहीं होगी, मगर वह विभिन्न कारणों से खामोश रहे होंगे।

ऐसे लोग जो 'पोस्को' कानून के तहत दोष के भागी माने जाते हैं। सवाल है कि जब आधे से अधिक बच्चे अत्याचार अपने 'आत्मीयों' के हाथों झेल रहे हों तो कौन चुप्पी तोड़ेगा और कौन जोखिम उठाएगा?

(लेखक सामाजिक कार्यकर्ता और चिंतक हैं)

ऐसा क्या लिखती थी गौरी लंकेश कि मारी गई?

पत्रकारिता जगत की एक बुलंद आवाज़ गौरी लंकेश को खामोश कर दिया गया है। 16 पन्नों की उनकी पत्रिका 'गौरी लंकेश पत्रिके' हर हफ्ते निकलती है, जिसकी कीमत 15 रुपये है। 13 सितंबर का अंक इसका आख़िरी अंक साबित हुआ। हमने अपने मित्र की मदद से उनके आख़िरी संपादकीय का हिन्दी में अनुवाद किया है, ताकि आपको पता चल सके कि कन्नड़ भाषा में लिखने वाली इस पत्रकार की लिखावट कैसी थी, उसकी धार कैसी थी। हर अंक में गौरी 'कंडा हागे' नाम से कॉलम लिखती थीं, जिसका मतलब होता है 'जैसा मैंने देखा'। उनका संपादकीय पत्रिका के तीसरे पन्ने पर छपता था। इस बार का संपादकीय फेक न्यूज़ के मुद्दे पर था और उसका टाइटल था—'फेक न्यूज़ के ज़माने में'। *—वरिष्ठ पत्रकार* ***रवीश कुमार*** *की फेसबुक वॉल से साभार*

'**इस** हफ्ते के इश्यू में मेरे दोस्त डॉ. वासु ने गोएबल्स की तरह इंडिया में फेक न्यूज़ बनाने की फैक्ट्री के बारे में लिखा है। झूठ की ऐसी फैक्ट्रियां ज़्यादातर मोदी भक्त ही चलाते हैं। झूठ की फैक्ट्री से जो नुकसान हो रहा है मैं उसके बारे में अपने संपादकीय में बताने का प्रयास करूंगी। अभी परसों ही गणेश चतुर्थी थी। उस दिन सोशल मीडिया में एक झूठ फैलाया गया। फैलाने वाले संघ के लोग थे। ये झूठ क्या है ? झूठ ये है कि कर्नाटक सरकार जहां बोलेगी वहीं गणेश जी की प्रतिमा स्थापित करनी है, उसके पहले दस लाख का डिपाज़िट करना होगा, मूर्ति की ऊंचाई कितनी होगी, इसके लिए सरकार से अनुमति लेनी होगी, दूसरे धर्म के लोग जहां रहते हैं उन रास्तों से विसर्जन के लिए नहीं ले जा सकते हैं। पटाखे वगैरह नहीं छोड़ सकते हैं। संघ के लोगों ने इस झूठ को खूब फैलाया। ये झूठ इतना ज़ोर से फैल गया कि अंत में कर्नाटक के पुलिस प्रमुख आर. के. दत्ता को प्रेस कॉन्फ्रेंस बुलानी पड़ी और सफाई देनी पड़ी कि सरकार ने ऐसा कोई नियम नहीं बनाया है। ये सब झूठ है।

इस झूठ का सोर्स जब हमने पता करने की कोशिश की तो वो जाकर पहुंचा POSTCARD.IN नाम की वेबसाइट पर। यह वेबसाइट पक्के हिन्दुत्ववादियों की है। इसका काम हर दिन फ़ेक न्यूज़ बनाकर सोशल मीडिया में फैलाना है। 11 अगस्त को POSTCARD.IN में एक हेडिंग लगाई गई। कर्नाटक में तालिबान सरकार। इस हेडिंग के सहारे राज्य भर में झूठ फैलाने की कोशिश हुई। संघ के लोग इसमें कामयाब भी हुए। जो लोग किसी न किसी वजह से सिद्धारमैया सरकार से नाराज़ रहते हैं उन लोगों ने इस फ़ेक न्यूज़ को अपना हथियार बना लिया। सबसे आश्चर्य और खेद की बात है कि लोगों ने भी बग़ैर सोचे समझे इसे सही मान लिया। अपने कान, नाक और भेजे का इस्तेमाल नहीं किया।

पिछले सप्ताह जब कोर्ट ने राम रहीम नाम के एक ढोंगी बाबा को बलात्कार के मामले में सज़ा सुनाई तब उसके साथ बीजेपी के नेताओं की कई तस्वीरें सोशल मीडिया में वायरल होने लगी। इस ढोंगी बाबा के साथ मोदी के साथ-साथ हरियाणा के बीजेपी विधायकों की फोटो और वीडियो वायरल होने लगा। इससे बीजेपी और संघ परिवार परेशान हो गए। इसे काउंटर करने के लिए गुरमीत बाबा के बाजू में केरल के सीपीएम के मुख्यमंत्री पिनराई विजयन के बैठे होने की तस्वीर वायरल करा दी गई। यह तस्वीर फोटोशाप थी। असली तस्वीर में कांग्रेस के नेता ओमन चांडी बैठे हैं लेकिन उनके धड़ पर विजयन का सर लगा दिया गया और संघ के लोगों ने इसे सोशल मीडिया में फैला दिया। शुक्र है संघ का यह तरीका कामयाब नहीं हुआ क्योंकि कुछ लोग तुरंत ही इसका ओरिजनल फोटो निकाल लाए और सोशल मीडिया में सच्चाई सामने रख दी।

एक्चुअली, पिछले साल तक राष्ट्रीय स्वंयसेवक संघ के फ़ेक न्यूज़ प्रोपेगैंडा को रोकने या सामने लाने वाला कोई नहीं था। अब बहुत से लोग इस तरह के काम में जुट गए हैं, जो कि अच्छी बात है। पहले इस

तरह के फ़ेक न्यूज़ ही चलती रहती थी लेकिन अब फ़ेक न्यूज़ के साथ-साथ असली न्यूज़ भी आनी शुरू हो गए हैं और लोग पढ़ भी रहे हैं।

उदाहरण के लिए 15 अगस्त के दिन जब लाल किले से प्रधानमंत्री मोदी ने भाषण दिया तो उसका एक विश्लेषण 17 अगस्त को खूब वायरल हुआ। ध्रुव राठी ने उसका विश्लेषण किया था। ध्रुव राठी देखने में तो कॉलेज के लड़के जैसा है लेकिन वो पिछले कई महीनों से मोदी के झूठ की पोल सोशल मीडिया में खोल देता है। पहले ये वीडियो हम जैसे लोगों को ही दिख रहा था, आम आदमी तक नहीं पहुंच रहा था लेकिन 17 अगस्त का वीडियो एक दिन में एक लाख से ज़्यादा लोगों तक पहुंच गया। (गौरी लंकेश अक्सर मोदी को बूसी बसिया लिखा करती थीं जिसका मतलब है जब भी मुंह खोलेंगे झूठ ही बोलेंगे)। ध्रुव राठी ने बताया कि राज्य सभा में 'बूसी बसिया' की सरकार ने राज्य सभा में महीना भर पहले कहा कि 33 लाख नए करदाता आए हैं। उससे भी पहले वित्त मंत्री जेटली ने 91 लाख नए करदाताओं के जुड़ने की बात कही थी। अंत में आर्थिक सर्वे में कहा गया कि सिर्फ 5 लाख 40 हज़ार नए करदाता जुड़े हैं। तो इसमें कौन सा सच है, यही सवाल ध्रुव राठी ने अपने वीडियो में उठाया है।

आज की मेनस्ट्रीम मीडिया केंद्र सरकार और बीजेपी के दिए आंकड़ों को जस का तस वेद वाक्य की तरह फैलाती रहती है। मेन स्ट्रीम मीडिया के लिए सरकार का बोला हुआ वेद वाक्य हो गया है। उसमें भी जो टीवी न्यूज चैनल हैं, वो इस काम में दस कदम आगे हैं। उदाहरण के लिए, जब रामनाथ कोविंद ने राष्ट्रपति पद की शपथ ली तो उस दिन बहुत सारे अंग्रेज़ी टीवी चैनलों ने ख़बर चलाई कि सिर्फ एक घंटे में ट्वीटर पर राष्ट्रपति कोविद के फोलोअर की संख्या 30 लाख हो गई है। वो चिल्लाते रहे कि 30 लाख बढ़ गया, 30 लाख बढ़ गया। उनका मकसद यह बताना था कि कितने लोग कोविद को सपोर्ट कर रहे हैं। बहुत से टीवी चैनल आज राष्ट्रीय स्वंयसेवक संघ की टीम की तरह हो गए हैं। संघ का ही काम करते हैं। जबकि सच ये था कि उस दिन पूर्व राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी का सरकारी अकाउंट नए राष्ट्रपति के नाम हो गया। जब ये बदलाव हुआ तब राष्ट्रपति भवन के फोलोअर अब कोविद के फोलोअर हो गए। इसमें एक बात और भी गौर करने वाली ये है कि प्रणब मुखर्जी को तीस लाख से भी ज्यादा लोग ट्वीटर पर फोलो करते थे।

आज राष्ट्रीय स्वंयसेवक संघ के इस तरह के फैलाए गए फ़ेक न्यूज़ की सच्चाई लाने के लिए बहुत से लोग सामने आ चुके हैं। ध्रुव राठी वीडियो के माध्यम से ये काम कर रहे हैं। प्रतीक सिन्हा altnews.in नाम की वेबसाइट से ये काम कर रहे हैं। होक्स स्लेयर, बूम और फैक्ट चेक नाम की वेबसाइट भी यही काम कर रही है। साथ

ही साथ THEWIERE.IN, SCROLL.IN, NEWSLAUNDRY.COM, THEQUINT.COM जैसी वेबसाइट भी सक्रिय हैं। मैंने जिन लोगों ने नाम बताए हैं, उन सभी ने हाल ही में कई फ़ेक न्यूज़ की सच्चाई को उजागर किया है। इनके काम से संघ के लोग काफी परेशान हो गए हैं। इसमें और भी महत्व की बात यह है कि ये लोग पैसे के लिए काम नहीं कर रहे हैं। इनका एक ही मकसद है कि फासिस्ट लोगों के झूठ की फैक्ट्री को लोगों के सामने लाना।

कुछ हफ्ते पहले बंगलुरू में ज़ोरदार बारिश हुई। उस टाइम पर संघ के लोगों ने एक फोटो वायरल कराया। कैप्शन में लिखा था कि नासा ने मंगल ग्रह पर लोगों के चलने का फोटो जारी किया है। बंगलुरू नगरपालिका बीबीएमसी ने बयान दिया कि ये मंगल ग्रह का फोटो नहीं है। संघ का मकसद था, मंगल ग्रह का बताकर बंगलुरू का मज़ाक उड़ाना। जिससे लोग यह समझें कि बंगलुरू में सिद्धारमैया की सरकार ने कोई काम नही किया, यहां के रास्ते खराब हो गए हैं, इस तरह के प्रोपेगैंडा करके झूठी खबर फैलाना संघ का मकसद था। लेकिन ये उनको भारी पड़ गया था क्योंकि ये फोटो बंगलुरू का नहीं, महाराष्ट्र का था, जहां बीजेपी की सरकार है।

हाल ही में पश्चिम बंगाल में जब दंगे हुए तो आर एस एस के लोगों ने दो पोस्टर जारी किए। एक पोस्टर का कैप्शन था, बंगाल जल रहा है, उसमें प्रोपर्टी के जलने की तस्वीर थी। दूसरे फोटो में एक महिला की साड़ी खींची जा रही है और कैप्शन है बंगाल में हिन्दु महिलाओं के साथ अत्याचार हो रहा है। बहुत जल्दी ही इस फोटो का सच सामने आ गया। पहली तस्वीर 2002 के गुजरात दंगों की थी जब मुख्यमंत्री मोदी ही सरकार में थे। दूसरी तस्वीर में भोजपुरी सिनेमा के एक सीन की थी। सिर्फ आर एस एस ही नहीं बीजेपी के केंद्रीय मंत्री भी ऐसे फ़ेक न्यूज़ फैलाने में माहिर हैं। उदाहरण के लिए केंद्रीय मंत्री नितिन गडकरी ने फोटो शेयर किया कि जिसमें कुछ लोग तिरंगे में आग लगा रहे थे। फोटो के कैप्शन पर लिखा था गणतंत्र के दिवस हैदराबाद में तिरंगे को आग लगायी जा रही है। अभी गूगल इमेज सर्च नाम से एक नया एप्लिकेशन आया है, उसमें आप किसी भी तस्वीर को डालकर जान सकते हैं कि ये कहां और कब की है। प्रतीक सिन्हा ने यही काम किया और उस एप्लिकेशन के ज़रिये गडकरी के शेयर किए गए फोटो की सच्चाई उजागर कर दी। पता चला कि ये फोटो हैदराबाद का नहीं है। पाकिस्तान का है जहां एक प्रतिबंधित कट्टरपंथी संगठन भारत के विरोध में तिरंगे को जला रहा है।

इसी तरह एक टीवी पैनल के डिस्कशन में बीजेपी के प्रवक्ता संबित पात्रा ने कहा कि सरहद पर सैनिकों को तिरंगा लहराने में कितनी मुश्किलें आती हैं, फिर जे एन यू जैसे विश्वविद्यालयों में तिरंगा लहराने में क्या समस्या है। यह सवाल पूछकर संबित ने एक तस्वीर दिखाई। बाद में पता चला कि यह एक मशहूर तस्वीर है मगर इसमें भारतीय नहीं, अमरीकी सैनिक हैं। दूसरे विश्व युद्ध के दौरान अमरीकी सैनिकों ने जब जापान के एक द्वीप पर क़ब्ज़ा किया तब उन्होंने अपना झंडा लहराया था। मगर फोटोशाप के ज़रिये संबित पात्रा लोगों को चकमा दे रहे थे। लेकिन ये उन्हें काफी भारी पड़ गया। ट्वीटर पर संबित पात्रा का लोगों ने काफी मज़ाक उड़ाया।

केंद्रीय मंत्री पीयूष गोयल ने हाल ही में एक तस्वीर साझा की। लिखा कि भारत 50,000 किलोमीटर रास्तों पर सरकार ने तीस लाख एल ई डी बल्ब लगा दिए हैं। मगर जो तस्वीर उन्होंने लगाई वो फ़ेक निकली। भारत की नहीं, 2009 में जापान की तस्वीर की थी। इसी गोयल ने पहले भी एक ट्वीट किया था कि कोयले की आपूर्ति में सरकार ने 25,900 करोड़ की बचत की है। उस ट्वीट की तस्वीर भी झूठी निकली। छत्तीसगढ़ के पी डब्ल्यू डी मंत्री राजेश मूणत ने एक ब्रिज का फोटो शेयर किया। अपनी सरकार की कामयाबी बताई। उस ट्वीट को 2000 लाइक मिले। बाद में पता चला कि वो तस्वीर छत्तीसगढ़ की नहीं, वियतनाम की है।

ऐसे फ़ेक न्यूज़ फैलाने में हमारे कर्नाटक के आर एस एस और बीजेपी लीडर भी कुछ कम नहीं हैं। कर्नाटक के सांसद प्रताप सिम्हा ने एक रिपोर्ट शेयर की, कहा कि ये टाइम्स ऑफ इंडिया मे आयी है। उसकी हेडलाइन ये थी कि हिन्दू लड़की को मुसलमान ने चाकू मारकर हत्या कर दी। दुनिया भर को नैतिकता का ज्ञान देने वाले प्रताप सिम्हा ने सच्चाई जानने की ज़रा भी कोशिश नहीं की। किसी भी अखबार ने इस न्यूज़ को नहीं छापा था बल्कि फोटोशाप के ज़रिए किसी दूसरे न्यूज़ में हेडलाइन लगा दी गयी थी और हिन्दू मुस्लिम रंग दिया गया। इसके लिए टाइम्स ऑफ इंडिया का नाम इस्तेमाल किया गया। जब हंगामा हुआ कि ये तो फ़ेक न्यूज़ है तो सांसद ने इसे डिलिट कर दिया मगर माफी नहीं मांगी। सांप्रादायिक झूठ फैलाने पर कोई पछतावा ज़ाहिर नहीं किया।

जैसा कि मेरे दोस्त वासु ने इस बार के कॉलम में लिखा है, मैंने भी बिना समझे एक फ़ेक न्यूज़ शेयर कर दी। पिछले रविवार पटना की अपनी रैली की तस्वीर लालू यादव ने फोटोशाप करके साझा कर दी। थोड़ी देर में दोस्त शशिधर ने बताया कि ये फोटो फर्ज़ी है। नकली है। मैंने तुरंत हटाया और ग़लती भी मानी। यही नहीं फ़ेक और असली तस्वीर दोनों को एक साथ ट्वीट किया। इस गलती के पीछे सांप्रदियाक रूप से भड़काने या प्रोपेगैंडा करने की मंशा नहीं थी। फासिस्टों के ख़िलाफ़ लोग जमा हो रहे थे, इसका संदेश देना ही मेरा मकसद था। फाइनली, जो भी फ़ेक न्यूज़ को एक्सपोज़ करते हैं, उनको सलाम । मेरी ख़्वाहिश है कि उनकी संख्या और भी ज़्यादा हो।'

हिंदू राष्ट्र-हिंदू राष्ट्र चिल्लाने वाले देश को हानि पहुँचा रहे हैं

■ गणेश शंकर विद्यार्थी

देश में कहीं-कहीं राष्ट्रीयता के भाव को समझने में गहरी और भद्दी भूल की जा रही है। आये दिन हम इस भूल के अनेकों प्रमाण पाते हैं। यदि इस भाव के अर्थ भली-भांति समझ लिए गए होते तो इस विषय में बहुत-सी अनर्गल और अस्पष्ट बातें सुनने में न आतीं। राष्ट्रीयता जातीयता नहीं है। राष्ट्रीयता धार्मिक सिद्धांतों का दायरा नहीं है। राष्ट्रीयता सामाजिक बंधनों का घेरा नहीं है। राष्ट्रीयता का जन्म देश के स्वरूप से होता है। उसकी सीमाएं देश की सीमाएं हैं। प्राकृतिक विशेषता और भिन्नता देश को संसार से अलग और स्पष्ट करती हैं और उसके निवासियों को एक विशेष बंधन-किसी सादृश्य के बंधन-से बांधती है।

राष्ट्र पराधीनता के पालने में नहीं पलता। स्वाधीन देश ही राष्ट्रों की भूमि है, क्योंकि पुच्छ-विहीन पशु हों तो हों, परंतु अपना शासन अपने हाथों में न रखने वाले राष्ट्र नहीं होते। राष्ट्रीयता का भाव मानव-उन्नति की एक सीढ़ी है। उसका उदय नितांत स्वााभाविक रीति से हुआ। यूरोप के देशों में यह सबसे पहले जन्मा। मनुष्य उसी समय तक मनुष्य है, जब तक उसकी दृष्टि के सामने कोई ऐसा ऊंचा आदर्श है, जिसके लिए वह अपने प्राण तक दे सके। समय की गति के

साथ आदर्शों में परिवर्तन हुए।

धर्म के आदर्श के लिए लोगों ने जान दी और तन कटाया। परंतु संसार के भिन्न-भिन्न धर्मों के संघर्षण, एक-एक देश में अनेक धर्मों के होने तथा धार्मिक भावों की प्रधानता से देश के व्यापार, कला-कौशल और सभ्यता की उन्नति में रुकावट पड़ने से, अंत में धीरे-धीरे धर्म का पक्षपात कम हो चला और लोगों के सामने देश-प्रेम का स्वाभाविक आदर्श सामने आ गया।

जो प्राचीन काल में धर्म के नाम पर कटते-मरते थे, आज उनकी संतति देश के नाम पर मरती है। पुराने अच्छे थे या ये नये, इस पर बहस करना फिजूल ही है, पर उनमें भी जीवन था और इनमें भी जीवन है। वे भी त्याग करना जानते थे और ये भी और ये दोनों उन अभागों से लाख दर्जे अच्छे और सौभाग्यवान हैं जिनके सामने कोई आदर्श नहीं और जो हर बात में मौत से डरते हैं। ये पिछले आदमी अपने देश के बोझ और अपनी माता की कोख के कलंक हैं।

देश-प्रेम का भाव इंग्लैंड में उस समय उदय हो चुका था, जब स्पेन के कैथोलिक राजा फिलिप ने इंग्लैंड पर अजेय जहाजी बेड़े आरमेड़ा द्वारा चढ़ाई की थी, क्योंकि इंग्लैंड के कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट, दोनों प्रकार के ईसाइयों ने देश के शत्रु का एक-सा स्वागत किया। फ्रांस की राज्यक्रांति ने राष्ट्रीयता को पूरे वैभव से खिला दिया। इस प्रकाशमान रूप को देखकर गिरे हुए देशों को आशा का मधुर संदेश मिला।

19वीं शताब्दी राष्ट्रीयता की शताब्दी थी। वर्तमान जर्मनी का उदय इसी शताब्दी में हुआ। पराधीन इटली ने स्वेच्छाचारी आस्ट्रिया के बंधनों से मुक्ति पाई। यूनान को स्वाधीनता मिली और बालकन के अन्य राष्ट्र भी कब्रों से सिर निकाल कर उठ पड़े। गिरे हुए पूर्व ने भी अपनी विभूति दिखाई। बाहर वाले उसे दोनों हाथों से लूट रहे थे। उसे चैतन्यता प्राप्त हुई। उसने अंगड़ाई ली और चोरों के कान खड़े हो गये। उसने संसार की गति की ओर दृष्टि फेरी। देखा, संसार को एक नया प्रकाश मिल गया है और जाना कि स्वार्थ परायणता के इस अंधकार को बिना उस प्रकाश के पार करना असंभव है। उसके मन में हिलोरें उठीं और अब हम उन हिलोरों के रत्न देख रहे हैं।

जापान एक रत्न है – ऐसा चमकता हुआ कि राष्ट्रीयता उसे कहीं भी पेश कर सकती है। लहर रुकी नहीं। बढ़ी और खूब बढ़ी। अफीमची चीन को उसने जगाया और पराधीन भारत को उसने चेताया। फारस में उसने जागृति फैलाई और एशिया के जंगलों और खोहों तक में राष्ट्रीयता की प्रतिध्वनि इस समय किसी न किसी रूप में उसने पहुंचाई। यह संसार की लहर है। इसे रोका नहीं जा सकता। वे स्वेच्छाचारी अपने हाथ तोड़ लेंगे—जो उसे रोकेंगे और उन मुर्दों की खाक का भी पता नहीं लगेगा—जो इसके संदेश को नहीं सुनेंगे।

भारत में हम राष्ट्रीयता की पुकार सुन चुके हैं। हमें भारत के उच्च और उज्ज्वल भविष्य का विश्वास है। हमें विश्वास है कि हमारी बाढ़ किसी के रोके नहीं रुक सकती। रास्ते में रोकने वाली चट्टानें आ सकती हैं। चट्टानें पानी की किसी बाढ़ को नहीं रोक सकतीं, परंतु एक बात है, हमें जान-बूझकर मूर्ख नहीं बनना चाहिए। ऊटपटांग रास्ते नहीं नापने चाहिए।

कुछ लोग 'हिंदू राष्ट्र'-'हिंदू राष्ट्र' चिल्लाते हैं। हमें क्षमा किया जाय, यदि हम कहें-नहीं, हम इस बात पर जोर दें—कि वे एक बड़ी भारी भूल कर रहे हैं और उन्होंने अभी तक 'राष्ट्र' शब्द। के अर्थ ही नहीं समझे। हम भविष्यवक्ता नहीं, पर अवस्था हमसे कहती है कि अब संसार में 'हिंदू राष्ट्र' नहीं हो सकता, क्योंकि राष्ट्र का होना उसी समय संभव है, जब देश का शासन देशवालों के हाथ में हो और यदि मान लिया जाय कि आज भारत स्वाधीन हो जाये, या इंग्लैंड उसे औपनिवेशिक स्वराज्य दे दे, तो भी हिंदू ही भारतीय राष्ट्र के सब कुछ न होंगे और जो ऐसा समझते हैं—हृदय से या केवल लोगों को प्रसन्न करने के लिए- वे भूल कर रहे हैं और देश को हानि पहुंचा रहे हैं।

वे लोग भी इसी प्रकार की भूल कर रहे हैं जो टर्की या काबुल, मक्काह या जेद्दा का स्वप्न देखते हैं, क्योंकि वे उनकी जन्मभूमि नहीं और इसमें कुछ भी कटुता न समझी जानी चाहिए, यदि हम यह कहें कि उनकी कब्रें इसी देश में बनेंगी और उनके मरसिये—यदि वे इस योग्य होंगे तो—इसी देश में गाये जाएंगे, परंतु हमारा प्रतिपक्षी, नहीं, राष्ट्रीयता का विपक्षी मुंह बिचका कर कह सकता है कि राष्ट्रीयता स्वार्थों की खान है। देख लो इस महायुद्ध को और इन्कार करने का साहस करो कि संसार के राष्ट्र पक्के स्वार्थी नहीं है? हम इस विपक्षी का स्वागत करते हैं, परंतु संसार की किस वस्तु में बुराई और भलाई दोनों बातें नहीं हैं?

लोहे से डॉक्टर का घाव चीरने वाला चाकू और रेल की पटरियां बनती हैं और इसी लोहे से हत्यारे का छुरा और लड़ाई की तोपें भी बनती हैं। सूर्य का प्रकाश फूलों को रंग-बिरंगा बनाता है पर वह बेचारा मुर्दा लाश का क्या करे, जो उसके लगते ही सड़कर बदबू देने लगती है। हम राष्ट्रीयता के अनुयायी हैं, पर वही हमारी सब कुछ नहीं, वह केवल हमारे देश की उन्नति का उपाय-भर है।

साभार : द वायर

बिरसा मुंडा : जिनके उलगुलान और बलिदान ने उन्हें भगवान बना दिया

■ **अनुराग भारद्वाज**

हालात आज भी वैसे ही हैं जैसे बिरसा मुंडा के वक्त थे। आदिवासी खदेड़े जा रहे हैं, दिकू अब भी हैं। जंगलों के संसाधन तब भी असली दावेदारों के नहीं थे और न ही अब हैं।

*महान उपन्यासकार **महाश्वेता देवी** के उपन्यास 'जंगल के दावेदार' का एक अंश*

सवेरे आठ बजे बिरसा मुंडा खून की उलटी कर, अचेत हो गया। बिरसा मुंडा—सुगना मुंडा का बेटा; उम्र पच्चीस वर्ष—विचाराधीन बंदी। तीसरी फरवरी को बिरसा पकड़ा गया था, किन्तु उस मास के अंतिम सप्ताह तक बिरसा और अन्य मुंडाओं के विरुद्ध केस तैयार नहीं हुआ था।...क्रिमिनल प्रोसीजर कोड की बहुत सी धाराओं में मुंडा पकड़ा गया था, लेकिन बिरसा जानता था उसे सज़ा नहीं होगी,' डॉक्टर को बुलाया गया उसने मुंडा की नाड़ी देखी। वो बंद हो चुकी थी। बिरसा मुंडा नहीं मरा था, आदिवासी मुंडाओं का 'भगवान' मर चुका था।

आदिवासियों का संघर्ष अट्ठारहवीं शताब्दी से चला आ रहा है। 1766 के पहाड़िया-विद्रोह से लेकर 1857 के ग़दर के बाद भी आदिवासी संघर्षरत

रहे। सन 1895 से 1900 तक बिरसा या बिरसा मुंडा का महाविद्रोह 'ऊलगुलान' चला। आदिवासियों को लगातार जल-जंगल-ज़मीन और उनके प्राकृतिक संसाधनों से बेदखल किया जाता रहा और वे इसके खिलाफ आवाज उठाते रहे।

1895 में बिरसा ने अंग्रेजों की लागू की गयी ज़मींदारी प्रथा और राजस्व-व्यवस्था के ख़िलाफ़ लड़ाई के साथ-साथ जंगल-ज़मीन की लड़ाई छेड़ी थी। बिरसा ने सूदखोर महाजनों के ख़िलाफ़ भी जंग का ऐलान किया। ये महाजन, जिन्हें वे दिकू कहते थे, क़र्ज़ के बदले उनकी ज़मीन पर कब्ज़ा कर लेते थे। यह मात्र विद्रोह नहीं था। यह आदिवासी अस्मिता, स्वायतत्ता और संस्कृति को बचाने के लिए संग्राम था।

आदिवासी और स्त्री मुद्दों पर अपने काम के लिए चर्चित साहित्यकार रमणिका गुप्ता अपनी किताब 'आदिवासी अस्मिता का संकट' में लिखती हैं, 'आदिवासी इलाकों के जंगलों और ज़मीनों पर, राजा-नवाब या अंग्रेजों का नहीं जनता का कब्ज़ा था। राजा-नवाब थे तो ज़रूर, वे उन्हें लूटते भी थे, पर वे उनकी संस्कृति और व्यवस्था में दखल नहीं देते थे। अंग्रेज़ भी शुरू में वहां जा नहीं पाए थे। रेलों के विस्तार के लिए, जब उन्होंने पुराने मानभूम और दामन-ए-कोह (वर्तमान में संथाल परगना) के इलाकों के जंगल काटने शुरू कर दिए और बड़े पैमाने पर आदिवासी विस्थापित होने लगे, आदिवासी चौंके और मंत्रणा शुरू हुई।' वे आगे लिखती हैं, 'अंग्रेजों ने ज़मींदारी व्यवस्था लागू कर आदिवासियों के वे गांव, जहां व सामूहिक खेती किया करते थे, ज़मींदारों, दलालों में बांटकर, राजस्व की नयी व्यवस्था लागू कर दी। इसके विरुद्ध बड़े पैमाने पर लोग आंदोलित हुए और उस व्यवस्था के ख़िलाफ़ विद्रोह शुरू कर दिए।'

बिरसा मुंडा को उनके पिता ने मिशनरी स्कूल में भर्ती किया था जहां उन्हें ईसाइयत का पाठ पढ़ाया गया। कहा जाता है कि बिरसा ने कुछ ही दिनों में यह कहकर कि 'साहेब साहेब एक टोपी है' स्कूल से नाता तोड़ लिया। जो आदिवासी किसी महामारी को दैवीय प्रकोप मानते थी उनको वे महामारी से बचने के उपाय समझाते। मुंडा आदिवासी हैजा, चेचक, सांप के काटने बाघ के खाए जाने को ईश्वर की मर्ज़ी मानते, बिरसा उन्हें सिखाते कि चेचक-हैजा से कैसे लड़ा जाता है। बिरसा अब धरती आबा यानी धरती पिता हो गए थे।

धीरे-धीरे बिरसा का ध्यान मुंडा समुदाय की ग़रीबी की ओर गया। आज की तरह ही आदिवासियों का जीवन तब भी अभावों से भरा हुआ था। न खाने को भात था न पहनने को कपड़े। एक तरफ ग़रीबी थी और दूसरी तरफ 'इंडियन फारेस्ट एक्ट' 1882 ने उनके जंगल छीन लिए थे। जो जंगल के दावेदार थे, वही जंगलों से बेदख़ल कर दिए गए। यह देख बिरसा ने हथियार उठा लिए। उलगुलान शुरू हो गया था।

अपनों का धोखा

संख्या और संसाधन कम होने की वजह से बिरसा ने छापामार लड़ाई का सहारा लिया। रांची और उसके आसपास के इलाकों में पुलिस उनसे आतंकित थी। अंग्रेजों ने उन्हें पकड़वाने के लिए पांच सौ रुपये का ईनाम रखा था जो उस समय बहुत बड़ी रकम थी। बिरसा मुंडा और अंग्रेजों के बीच अंतिम और निर्णायक लड़ाई 1900 में रांची के पास दूम्बरी पहाड़ी पर हुई। हज़ारों की संख्या में मुंडा आदिवासी बिरसा के नेतृत्व में लड़े। पर तीर-कमान और भाले कब तक बंदूकों और तोपों का सामना करते? लोग बेरहमी से मार दिए गए। 25 जनवरी, 1900 में स्टेट्समैन अखबार के मुताबिक इस लड़ाई में 400 लोग मारे गए थे।

अंग्रेज जीते तो सही पर बिरसा मुंडा हाथ नहीं आए। लेकिन जहां बंदूकें और तोपें काम नहीं आईं वहां पांच सौ रुपये ने काम कर दिया। बिरसा की ही जाति के लोगों ने उन्हें पकड़वा दिया!

महाश्वेता देवी अपने महान कालजयी उपन्यास 'जंगल के दावेदार' में लिखती हैं, 'अगर उसे उसकी धरती पर दो वक्त दो थाली घाटो, बरस में चार मोटे कपड़े, जाड़े में पुआल-भरे थैले का आराम, महाजन के हाथों छुटकारा, रौशनी करने के लिए महुआ का तेल, घाटो खाने के लिए काला नमक, जंगल की जड़ें और शहद आदि—ये सब मिल जाते तो बिरसा मुंडा शायद भगवान न बनता।'

हालात तो आज भी नहीं बदले हैं। आदिवासी गांवों से खदेड़े जा रहे हैं, दिकू अब भी हैं। जंगलों के संसाधन तब भी असली दावेदारों के नहीं थे और न ही अब हैं। आदिवासियों की समस्याएं नहीं बल्कि वे ही खत्म होते जा रहे हैं। सब कुछ वही है। जो नहीं है तो आदिवासियों के 'भगवान' बिरसा मुंडा।

ऐसे में कवि भुजंग मेश्राम की पंक्तियां याद आती हैं :

'बिरसा तुम्हें कहीं से भी आना होगा
घास काटती दराती हो या लकड़ी काटती कुल्हाड़ी
यहां-वहां से, पूरब-पश्चिम, उत्तर दक्षिण से
कहीं से भी आ मेरे बिरसा
खेतों की बयार बनकर
लोग तेरी बाट जोहते।'

साभार : सत्याग्रह

बाँध से ऊँचे बाँध के सवाल

इसी प्रसंग में देश में निर्मित बाँधों पर गौर करें तो पांच हजार दो सौ सैंतालीस बड़े बाँधों में से तीन सौ अरब घन मीटर पानी को जमा करने की क्षमता है। ४४० बाँधों पर निर्माण कार्य चल रहा है।

■ **भगवती डोभाल**

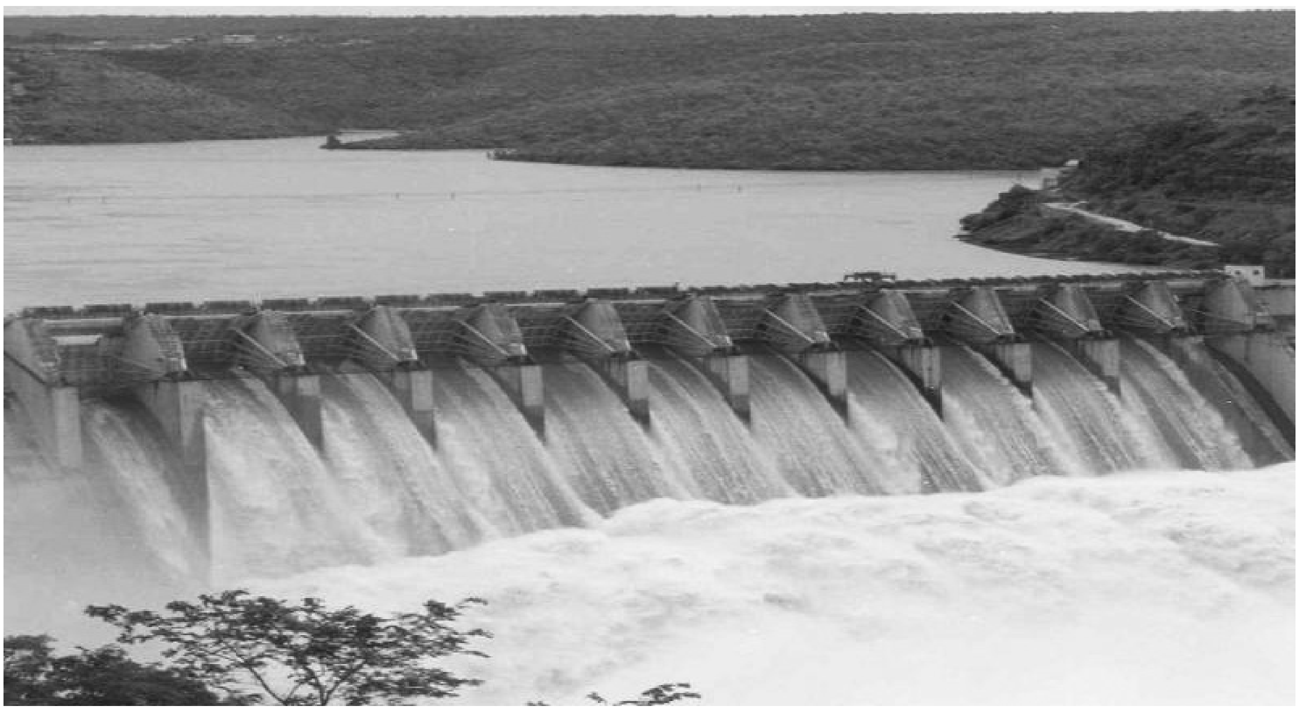

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने हाल ही में सरदार सरोवर बांध को देश को समर्पित किया। इस बांध की ऊंचाई को 138.68 मीटर तक बढ़ाया गया है, और इस तरह यह विश्व के सबसे बड़े बांधों में शामिल हो गया है। लेकिन विश्व में बड़े बांधों को लेकर बांध विषेशज्ञों की राय अच्छी नहीं है। जब टिहरी बांध बन रहा था, तब भी देश में बड़े बांधों को लेकर बहस चली थी। इस बांध की ऊंचाई 260.5 मीटर है। तमाम विरोध के बावजूद बांध बन कर तैयार हुआ। अभी यह उत्तरी भारत में (जिसमें दिल्ली भी शामिल है) पेयजल का एक बड़ा स्रोत है। सभी खुश हैं, पर कितने समय तक खुश रहेंगे, यह समय ही बताएगा। वैसे विशेषज्ञों का मानना है कि टिहरी बांध का जीवन अपनी घोषित उम्र का आधा रहेगा।

इसके कई कारण हैं। यह बांध भागीरथी नदी पर बना है। इसके उद्‌गम से ही लगातार काफी मात्रा में बालू बह कर आ रहा है। अन्य नदियों में बालू का बहाव इतना नहीं है। दो बार मुझे भी गोमुख तक जाने का अवसर मिला, मैंने दोनों बार देखा कि स्रोत से ही भारी मात्रा में रेत के कण पानी में बह रहे थे। यानी गंगोत्री ग्लेशियर तेजी से पिघल रहा है। पहली बार जब गया था, तब से दूसरी बार में उद्‌गम

पांच सौ मीटर से भी अधिक पीछे खिसक गया था। यानी जिस ग्लेशियर से पानी इतनी तेजी से पिघल कर बह रहा है, वह एक दिन समाप्त होगा ही। प्रकृति कितने दिन मनुष्य द्वारा बांध के रोके पानी का उपयोग करने देगी? हो सकता है स्रोत समाप्त हो जाए। इसकी आशंका तो है ही। अनुमान है कि बांध में पानी का संचयन पचास वर्षों में आधा होने की तरफ है। यह बात इस बांध की भौगोलिक अवस्था को देख कर की जा रही है। इसी प्रसंग में देश में निर्मित बांधों पर गौर करें तो पांच हजार दो सौ सैंतालीस बड़े बांधों में तीन सौ अरब घन मीटर पानी को जमा करने की क्षमता है। 440 बांधों पर निर्माण-कार्य चल रहा है। 196 बांध सौ वर्ष के हो गए हैं। इनमें से 72 बांध दक्षिण भारत और महाराष्ट्र में हैं। इनकी सुरक्षा और देखभाल सबसे पहले करनी होगी। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो इन बांधों के फटने से काफी जन-धन की तबाही होगी। जो भी आबादी इनके आसपास बसी है वह प्रभावित होने से बच नहीं पाएगी।

केंद्र ने अक्तूबर 1987 में बांधों की सुरक्षा के लिए एक राष्ट्रीय समिति का गठन किया था। इस समिति का काम बांधों की सुरक्षा का निरीक्षण करना और उनमें सुधार करने के सुझाव देना था। समिति का उच्च अधिकारी केंद्रीय जल आयोग का अध्यक्ष है। यह समिति अब तक सैंतीस बार अपनी सिफारिशें दे चुकी है। बांधों के रखरखाव में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका मानी जाती है। बांधों के विशेषज्ञ कैप्टन एस राजा राव, जो कर्नाटक के जल संसाधन विभाग के सचिव हैं, बांधों की सुरक्षा के संबंध में उनका मानना है कि जो बांध बाढ़ वाली जगह पर बने हैं उनकी स्थिति चिंतनीय है। वे कहते हैं कर्नाटक के अलामट्टी बांध को ही देख लीजिए। इसके आकार को विश्व बैंक की सलाह पर बढ़ाया गया था, लेकिन इसमें बहुत सारी खामियां हैं। हालांकि सरकारें बांधों की देखरेख पर खर्च कर रही हैं ताकि वे सुरक्षित रहें। इससे संबंधित परियोजना को बांध पुनर्वास और सुधार कार्यक्रम का नाम दिया गया है।

यूपीए सरकार ने पुनर्वास और सुधार कार्यक्रम को 2012 में शुरू किया था जो अभी पांच राज्यों में काम कर रहा है। ये राज्य कर्नाटक, तमिलनाडु, केरल, मध्यप्रदेश और ओड़िशा हैं। और दो एजेंसियां—झारखंड में दामोदर घाटी निगम और उत्तराखंड जल विद्युत निगम लि. हैं। इस कार्यक्रम का बजट 2 हजार 1 सौ करोड़ रुपए का था, इसे अब बढ़ा कर 3,400 करोड़ रुपए कर दिया गया है। इसमें अस्सी फीसद धनराशि विश्व बैंक मुहैया कराएगा। कार्यक्रम का लक्ष्य सभी बांधों की देखभाल करना है। कार्यक्रम के निदेशक प्रमोद नारायण के अनुसार वे अभी देश के सिर्फ 225 बांधों पर कार्य कर पा रहे हैं। इनमें वे 196 बांध शामिल नहीं हैं जो सौ वर्ष या उससे अधिक पुराने हैं। पिछले महीने इन्होंने पहली बार आपातकालीन योजना बनाई है। एस राजा राव मान रहे हैं कि सबसे बड़ी समस्या बड़े बांधों के खराब होने की है। इनमें रेत का भराव तीव्र गति से हो रहा है और उसे निकालना टेढ़ी खीर है। कर्नाटक में तुंगभद्रा बांध को ही लीजिए, यह चौंसठ वर्ष पुराना बांध है, इसमें सैंतीस प्रतिशत से अधिक रेत भर गई है। कर्नाटक विधानसभा में इस पर हुई चर्चा में बताया गया कि 0.11 प्रतिशत से अधिक रेत को बांध से नहीं निकाला जा सकता।

इसके अलावा, जिस स्थान पर बांध बने हैं उसके आसपास की जलवायु में भी परिवर्तन देखने में आ रहा है। जैसे, टिहरी बांध बनने के बाद अक्सर वर्षा के मौसम में बादल फटने की घटनाएं अधिक हो रही हैं, जिससे कहीं-कहीं तो गांव के गांव भारी बारिश से पानी और मलबे के साथ दब रहे हैं। वैज्ञानिकों को इस मौसम परिवर्तन और इसके उपचार पर भी गंभीरता से काम करना चाहिए। हिमालय क्षेत्र में इस तरह की पानी की बौछारों से बर्फ तो तेजी से पिघल ही रही है, साथ ही पहाड़ों की मिट्टी बह कर मैदानी भागों में आ रही है और पहाड़ बिना वनस्पतियों के नंगे होते जा रहे हैं। दूसरी ओर, पर्यटन का दबाव भी पर्वतीय भूमि पर बढ़ रहा है। इसका भी सीधा प्रभाव पर्यावरण संरक्षण के विपरीत है। पर्यटन से आर्थिक उपार्जन तो है, पर इस तरह की ज्यादा गतिविधियों से पारिस्थितिकी को खतरा भी उत्पन्न होता है। जैसे, पहाड़ को काट कर सड़कें तो बनीं ही, और लगातार बन भी रही हैं; इससे मिट्टी का कटाव बड़ी मात्रा में हो रहा है। जैसे ही बारिश होती है, वह पहाड़ों में रुक नहीं पाती है; और पहाड़, जो जल के स्रोत हैं, इस जल और मिट्टी को रोकने में असमर्थ हो रहे हैं। जंगल कम हो रहे हैं। इन सब कारणों से नदी-नालों के रास्ते जो मिट्टी बह जाती है, विशेषकर बरसात में, उसकी भरपाई नहीं हो पा रही है। और इसी कारण, जो भी बांध बन रहे हैं उनमें गाद के रूप में यह जमा हो रही है। फलस्वरूप ये बड़े बांध अपनी अनुमानित या घोषित आयु तक न तो पेयजल की आपूर्ति और न ही सिंचाई कर पाएंगे।

बांध हमारी जरूरत हैं, पर प्रकृति से इस जरूरत की पूर्ति सावधानीपूर्वक करने की कला हमारे वैज्ञानिकों के पास होनी चाहिए। इसलिए जरूरत आज ऐसे उपायों की है जिनमें पर्वत और नदियां अपनी मनोहारी छटा कायम रख सकें और पर्यावरण संरक्षित रहे। सबसे बड़ा अभियान समाप्त हो रही वनस्पतियों और वनों को वैज्ञानिक तौर से उपजाने का हो सकता है। पर्यटन भी ऐसा हो जिसमें प्रकृति के साथ छेड़छाड़ न हो। तभी विकास और पर्यावरण के संतुलन का रास्ता निकलेगा। साभार जनसत्ता

भारतीय संस्कृति का इतिहास, दास्तान-ए-खुसरो-2

■ महेश राठी

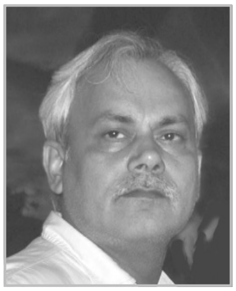

खुसरो ने जन मानस को रूचिकर लगने वाली अनेक तरह की नई विधाओं का अपने काव्य में प्रयोग करते हुए हिंदुस्तानी साहित्य को समृद्ध किया। पहेलियां, कह मुकरियां, निस्बतें, सुखने, दो सुखने, ढकोसले, अनमेलियां, गीत, कव्वाली और नुस्खे ऐसी विद्या हैं जो अमीर खुसरो से पहले लोक व्यवहार में तो थीं परंतु उनका कोई साहित्यिक रूप नही था।

पहेलियां : भारत में पहेलियों की पुरानी परंपरा रही है। अमीर खुसरो ने जनता में प्रचलित दो प्रकार की पहेलियों का अपनी काव्य विधा में उपयोग किया। एक बूझ पहेली और दूसरी अनबूझ पहेली। बूझ पहेलियों में पहेली का उत्तर पहेली में ही रहता है। जैसे दिये के बारे में खुसरो अपनी एक पहेली में कहते है :

बाला था जब सबको भाया, बड़ा हुआ काम ना आया

खुसरो कह दिया उसका नांव, अर्थ करो नही छोड़ों गांव।

दूसरी अबूझ पहेली जिसका उत्तर तलाश करना पड़ता है।

श्याम वरन की है एक नारी, माथे पर लगे प्यारी,

जो मानस इस अर्थ को खोले कुत्ते की बोली वह बोले। (उत्तर भौं)

आज भी लोक जीवन में पहेलियां प्रचलित हैं और खुसरो के साथ उनका नाम इस कदर जुड़ा हुआ है कि उनके बाद रचित पहेलियों को भी मौलिक सिद्ध करने के लिए उनके साथ खुसरो का नाम जोड़ा जाता है। यहां तक कि बंदूक और चिलम जैसी उन चीजों को भी पहेलियों के साथ जोड़ा जाता है, जिनका उनके

समय अविष्कार ही नही हुआ था।

कह मुकरियां : हिंदुस्तानी साहित्य की बेहद रोचक विद्या है। कह मुकरियां किसी बात को कह कर मुकर जाने का ही काव्य रूप है। यह लंबे समय से प्रचलित ऐसी विद्या है जिसमें एक सहेली अपनी दूसरी सहेली से ठिठोली करती है। ऐसी बात कहती है जिसका अर्थ साजन होता है परंतु पूछने पर मुकर जाती है और साजन की जगह दूसरा अर्थ बताती है। भारतीय समाज में इन कह मुकरियों का उपयोग हास परिहास के लिए खूब होता रहा है। ना केवल हिंदुस्तानी साहित्य में बल्कि कह मुकरियों का उपयोग हिंदी सिनेमा में भी हुआ।

वह आये तब शादी होय
उस बिन दूजा और न कोय
मीठे लागे वाके बोल,
ऐ सखी 'सजन' ना सखी ढोल।

पहेलियों, कह मुकरियों के अलावा निस्बतें, दो सुखना, ढकोसले या अनमोलियां को साहित्यिक विद्याओं के रूप में स्थापित करने में अमीर खुसरो का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

हिंदुस्तानी साहित्य में अमीर खुसरो के कई मौलिक योगदान हैं उनमें से एक कव्वाली ऐसी विद्या है जिसकी शुरुआत अमीर खुसरो से ही होती है। यही कारण है कि सभी कव्वाल अमीर खुसरो को ही अपना उस्ताद मानते हैं। कव्वाली फारसी शब्द कौल से बनी है। कौल का अर्थ प्रशंसा करना और यह उपासना की ऐसी विद्या है जिसमें सूफी साधू भावोन्माद में भक्ति गीत गाते हैं। कव्वाली दरअसल गीत, उपासना और भावोन्माद का ऐसा मिश्रित रूप हैं जो भक्ति में मदमस्त हो जाने को दर्शाता है। कव्वाली के छंदों की रचना से लेकर उसकी गीतात्मकता, उसके संगीत, लय और मदहोशी में हिंदु-मुस्लिम सांझी संस्कृति फूटकर बरसती है। अमीर खुसरो के नाम से अनेकों अनेक कव्वालियां प्रसिद्ध हैं :

छाप तिलक तज दीन्हीं रे, तोसे नैना मिलाके,
प्रेमवटी का गढ़वा पिलाके,
मतवारी कर दीन्ही रे, मो से नैना मिलाके,
'खुसरो' निजाम पर बलि बलि जाइए,
मौ सुहान कीन्हीं रे, मौ से नैना मिलाके।

जब हम भारतीय संस्कृति के इतिहास को दास्तान-ए-अमीर खुसरो कहते हैं तो उसका अर्थ केवल साहित्य में ही उनके योगदान की बात नही करते हैं, हिंदुस्तानी तहजीब का कोई रंग ऐसा नही है जिस पर खुसरो की छाप दिखाई नही पड़ती है। भारतीय कला पर भी खुसरो ने अमिट छाप छोड़ी है। वह महान सूफी संत, शायर और भाषाविद् के अलावा एक उच्चकोटि के संगीतकार भी थे। उन्होंने भारतीय और ईरानी संगीत के समन्वय से नई हिंदुस्तानी संगीत परंपरा की शुरुआत की, उसे समृद्ध किया। उन्होंने ईरानी और भारतीय संगीत को मिलाकर नये राग रागनियों का अविष्कार किया। और उनका योगदान राग रागनियों तक ही सीमित नही था उन्होंने नये-नये ऐसे वाद्ययंत्रों का अविष्कार किया जिनके बगैर आज के भारतीय संगीत की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता है। इस मायने में अमीर खुसरो का भारतीय संगीत में योगदान अविस्मरणीय और अमिट कहा जायेगा। किसी भी ध्वनि को काव्यरूप देने और किसी ख्याल को राग रागनी में ढाल देने की उनमें बेजोड़ और अद्भुत प्रतिभा थी। रूई धुनने वाले धुनिये की तांत से निकलने वाली आवाज को राग का स्वर देकर इस तरह से पेश कर देना मानो कोई राग अलापा जा रहा हो, यह प्रतिभा अमीर खुसरो में ही थी।

अमीर खुसरो ने ईरानी रागों को भारतीय रागों के साथ मिलाकर नए प्रकार के ऐसे रागों का निर्माण किया जिनके बगैर आज का भारतीय संगीत अधूरा है। हम अपनी संगीत विरासत की समृद्धि पर बेशक इतराते हों लेकिन अमीर खुसरो ना होते तो हमें अपने हिंदुस्तानी होने पर शायद इतना गर्व ना होता या वो ईरानी संगीत से परहेज करते तो शायद हमारी संगीत की विरासत इतनी समृद्ध और हमारे इतना इतराने लायक ना होती। ईरानी रागों और भारतीय रागों के समन्वय से बने जिन नये रागों की पहचान मो. शिबली नौमानी ने उनके द्वारा की गई वे इस प्रकार पहचाने जा सकते हैं :

1. राग मुजीर : गारा और एक फारसी राग का समन्वय।
2. साजगिरी : पूर्वी, गौरा, गुण, कली और एक फारसी राग का मेल।
3. ऐमन : हिंडोल में फारसी राग नौराज का समन्वय।
4. उश्शाक : सारंग, बसंत और एक फारसी राग से मिलकर बना राग।
5. मुवाफिक : ताडी मालसरी और फारसी दो गाह हुसैनी।
6. गनम : पूर्वी में परिवर्तित किया गया।
7. जील्फ : खाट राग में फारसी शहनाज का मेल।
8. फरगाना : सोलह हिंदी रागों में एक फारसी राग मिलाया गया।
9. सर पर्दाह : गौड़, सारंग और बिलावल में फारसी राग या धुन रास्त मिलाया।
10. बाखर्ज : विकार में फारसी राग का समन्वय।
11. फरो-दस्त-कानड़ा, गौरी और पूरबी के साथ एक फारसी राग।
12. सगम : राग कल्याण में फारसी राग का समन्वय।

ताल : खुसरो ने फारसी बहरो और वजनो को सामने रखकर सत्रह तालों को लोक प्रचलित किया : पश्तो, जूबहर, कव्वाली, सोल फाख्ता, होरी, जलाए-तिताला, सवारी, आड़ा, चौताला, झमरा, झपताल, खम्सा, फरोदस्त, पहलवान केद, दास्तान, पटताल और चपक।

ख्याल गायिकी : अमीर खुसरो के संगीत में योगदान की बात हो ख्याल का जिक्र ना हो, यह नामुमकिन है। भारतीय संगीत में ख्याल अमीर की ही देन है। कहा जाता है कि अमीर खुसरो ने ध्रुपद के स्थान पर ख्याल का अविष्कार किया। ध्रुपद अधिकतर संस्कृत में गाया जाता था और अधिकतर धार्मिक रीति रिवाजों में ही इसका प्रयोग होता था इसीलिए आम लोग इस राग का कोई खास मजा ले नही पाते थे और इसी से प्रेरणा लेकर अमीर खुसरो ने राग ख्याल का अविष्कार किया। यह राग ध्रुपद का ही विकसित रूप था जिसमें अधिक लोच और थोड़ी मुक्तता थी।

ख्याल के अलावा अमीर खुसरो ने कल्बाना, धमाल और मंढ़ा जैसी गायन परंपरा की भी ईजाद की।

संगीत के क्षेत्र में अमीर खुसरो का एक बड़ा योदान जहां राग रागनियों के निर्माण में था तो वहीं कई वाद्ययंत्रों के अविष्कार का श्रेय भी उन्हें दिया जा सकता है। इसमें सितार का नाम महत्वपूर्ण ढंग

से लिया जा सकता है। हालांकि सितार का अविष्कार अमीर खुसरो ने किया इस पर कुछ मतांतर भी है। परंतु यह वास्तविकता ही है कि भारतीय वीणा में से तीन तारों का एक वाद्ययंत्र अमीर खुसरो ने ही तैयार किया था जिसे बाद में सात तारों वाला बनाकर सितार कहा गया। इसी तरह, जैसे ध्रुपद से ख्याल निकला उसी प्रकार वीणा से सितार पैदा हुआ। ढोलक और तबला भी भारतीय संगीत में अमीर खुसरो की देन माने जाते हैं। इससे पहले भारत में पुराना वाद्ययंत्र पखावज था। खुसरो ने इसे दो भागों में बांटकर ढोलक और तबले में बदल दिया। बाद में हिंदुस्तान में वैवाहिक संगीत में ढोलक का भरपूर उपयोग दिखाई पड़ता है और इसका प्रचलन अभी तक भी जारी है।

अमीर खुसरो के दो संस्कृतियों में समन्वय के प्रयास से वर्तमान सांझी हिंदुस्तानी संस्कृति का विकास हुआ और इस समन्वय की छाप हिंदुस्तानी संस्कृति के प्रत्येक भाग में साफ दिखाई पड़ती है। भारतीय संगीत को यही ऐतिहासिक नया रंग देने में अमीर खुसरो का योगदान ही था जिसने आज के हिंदुस्तानी संगीत की नींव रखी। भारतीय संगीत में अमीर खुसरो के प्रयोगों के कारण ही संगीत के दो ढंग प्रसिद्ध हुए एक हिंदुस्तानी संगीत और दूसरा कर्नाटक संगीत।

इन्द्रप्रस्थ मत : राग ताल और अपनी भाषा के मेल से एक खुसरो स्कूल का निर्माण हुआ जिसके काम को मुस्लिम परंपरा में इल्मे खुसरो का नाम दिया और वहीं आग चलकर हिंदुओं ने इसे इन्द्रप्रस्थ मत कहा। यही परंपरा आज दिल्ली घराने के रूप में जानी जाती है। कव्वाली और कव्वाल इसी की देन हैं।

बसंत : भारतीय परंपरा में से बंसत के गीतों को चुनकर दरगाहों तक ले जाने और दरगाहों में बसंत उत्सव मनाने और बसंत उत्सव में कव्वाली को शामिल करने का श्रेय भी अमीर खुसरो को ही जाता है।

हजरत निजामुद्दीन औलिया के भानजे तकीउद्दीन का निधन हो जाने पर हजरत औलिया को भारी आघात लगा और वे इससे शोक में डूब गये। अमीर खुसरो ने उन्हें इस शोक से निकालने के ढेरों यत्न किये परंतु सफल नही हुए। एक दिन जब अमीर खुसरो कालकाजी की तरफ से गुज़र रहे थे तो उन्होंने कालकाजी मंदिर पर बसंत का मेला देखा। उसमें लोग कालकाजी मंदिर पर सरसों के फूल चढ़ा रहे थे और मस्त होकर गीत गा रहे थे। अमीर खुसरो इस नजारे को देखकर इतना भाव विभोर हुए कि उन्होंने फौरन हिंदी और फारसी के कुछ शेरों की रचना कर ड़ाली। सरसों के फूल हाथों में लिये और पगड़ी को टेढ़ा करके वे मस्तानी चाल में औलिया की सेवा में पहुंचे और सरसों के फूल उड़ाते हुए शेर पढ़ा—

अश्क रेज़ आमदस्त अब्र बहार,
साकिया गल बरेज़ो - बादः बयार

अर्थात बहार के मेघ अश्रु बहाने आ रहे हैं। साकी फूल बरसाओं और मदिरा पान कराओ।

यह शेर सुनकर कई दिनों से शोक में डूबे ख्वाजा निजामुद्दीन मुस्कारने लग। इसके बाद हर साल कालकाजी के मेले पर वे सूफी कव्वालों को लेकर जाते और मस्त होकर बसंत के गीत और कव्वालियां गाते। अब दिल्ली की दरगाहों में 15 दिनों तक यह बसंत का मेला चलता। मुसलमान सूफी संतों पर भी बसंत का रंग चढ़ने लगा और वहां भी बसंत मनाने का रिवाज चल निकला ।

कई भाषाओं के ज्ञाता खुसरो : अमीर खुसरो का कई भाषाओं पर अधिकार था, कई भाषाओं और बोलियों पर उनकी मजबूत पकड़ थी। वे फारसी के बड़े ज्ञाता और सबसे बड़े साहित्यकारों में से एक थे तो वहीं अरबी के भी बड़े जानकार विद्वान थे। देहलवी और खड़ी बोली, ब्रजभाषा, अवधी का असर भी उनके साहित्य में साफ दिखाई पड़ता है। इसके अलावा अमीर खुसरो को संस्कृत भाषा का अच्छा ज्ञान था। अमीर खुसरो भारतीय इतिहास परंपरा का ऐसा नाम है जिसे पूर्व में बंगाल की भाषा और लोक संस्कृति से लेकर पश्चिम में मुल्तान और यहां तक की पश्चिम एशिया के सुदूर हिस्सों की लोक परंपराओं और भाषाओं का ज्ञान था और जब हम अपने जीवन के अनेक रंगों में घुले इन रंगो के इतिहास पर एक गहन दृष्टि डालते हैं तो हमारा साक्षात्कार बार-बार अमीर खुसरो के इस योगदान से होता है। अमीर खुसरो भारत के ऐसे पहले साहित्यकार थे, जिन्होंने कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक और पूर्व में असम से लेकर पश्चिमी छोर गुजरात तक सभी भारतीय भाषाओं का सर्वेक्षण किया था। उनका यह सर्वेक्षण उनके ग्रंथ मसनवी नूह सिपहर के पांचवे अध्याय में है। सात सौ साल पहले किये गये उनके भाषाई सर्वेक्षण में भाषाओं की स्थिति बताई गयी थी। आज भी लगभग वही है। खुसरो ने हिंदुस्तान में बोली जाने वाली इन भाषाओ की जानकारी को स्वीकार करते हुए बताया है कि वे भी इनमें कई भाषाओं को जानते हैं, इन्हें बोल सकते हैं और समझ सकते हैं।

दानम व दरयाफ्ता व गुफ्ता हम
जुस्तों-रोशन शुदा जां बेशोकम

अर्थात कई भाषाओं से मैंने परिचय प्राप्त कर लिया जिन्हें मैं बोलता और जानता हूं। मैंने उनकी खोज कर ली है और मैं, उनको कमोबेश जानता हूं। खुसरो हिंदुस्तान की भाषाई विविधता पर अभिभूत हैं और बताते हैं कि मेरे देश की भाषाएं कहीं से उधार नही ली गई हैं और प्रत्येक इलाके में एक खास भाषा बोली जाती है।

खुसरो ने अपने ग्रंथ नूह-सिपेहर में हिंदी (सिंधी), लाहौरी

(पंजाबी), कश्मीरी, कबर, धूर समैंदरी, तिलंगी (तलगू), गुजर (गुजराती), माअबरी (तमिल, कोरोमंडल तटीय भाषा) गौरी (गौडी-बंगाल), अवद (अवधी) और दिल्ली और उसके आसपास बोली जाने वाली देहलवी का भाषाओं का अपने सर्वेक्षण में उल्लेख किया है।

सिंदी व लाहोरी व कश्मीरी व कबर
'धुर समंदरी व तिलंगी व गुजर
माअबरी व गौरी व बंगाल व अवद,
देहली व पैरामन्श अन्दर हमह हद
ईन हमह हिंदवी स्त ज़ अय्यामे-कुहन,
आम्मह बकार अस्त बहरनह सुखन।'

इस प्रकार अमीर खुसरो हिंदुस्तान की जिन 12 भाषाओं का उल्लेख करते हैं उनमें सिंधी, पंजाबी, कश्मीरी, कन्नड़, तमिल, तेलगू, गुजराती, मलयालय, उड़िया, बांग्ला, अवधी तथा दिल्ली के आसपास की भाषाएं हैं। खुसरो के भाषा सर्वेक्षण में मराठी और असमिया भाषाओं का उल्लेख नहीं है परंतु जिस कबर भाषा का उन्होंने उल्लेख किया है उसके बारे में अभी संशय बना हुआ है। कुछ विद्वान इसे डोगरी बताने का प्रयास करते हैं तो कुछ विद्वान इसे कन्नर अथवा कन्नड़ के रूप में भी देखते और पहचानते हैं। इसी प्रकार उन्होंने बांग्ला के लिए भी गौड़ और बंगाल का जिक्र किया है। संभव है कि वह बांगला और असमिया का उल्लेख कर रहे हों और असमिया उस समय एक स्वतंत्र भाषा के रूप में विकास के शुरुआती दौर में रही हो। बहरहाल, खुसरो के इस भाषाई सर्वेक्षण का ऐतिहासिक महत्व है और आज भी हम कमोबेश देश में इन्हीं भाषाओं का प्रचलन पाते हैं।

खड़ी बोली का चलन : खुसरो ने अपने भाषा सर्वेक्षण में जिस भाषा का इस्तेमाल किया है वह दिल्ली के आसपास बोली जाने वाली खड़ी बोली है जिसे वे हिंदवी अथवा देहलवी कहते हैं। इस बोली में साहित्य रचना करके उन्होंने इसे एक औपचारिक भाषा के रूप में स्थापित करने का बड़ा महत्ती काम किया है। अमीर खुसरो की इस भाषा का उत्तर भारत में उस प्रकार को विशेष विकास नहीं हो पाया परंतु यह दक्षिण के बहमनी, आदिलशाही और कुतुबशाही राज्यों में दक्खिनी के रूप में बोली जाती रही और इसे एक साहित्यिक भाषा के रूप में विकसित होने का मौका मिला। खड़ी बोली यही दक्खिनी अवतार फिर जब उत्तर भारत में वापस आता है तो इसे व्यापक स्वीकृति मिलती है और यह हिंदी के रूप में स्थापित होने में देर नही लगाती है। इस प्रकार आज की हिंदी और उर्दू की नींव अमीर खुसरो ने रख दी थी।

खुसरो ने दिल्ली के आसपास की जिस भाषा का उल्लेख किया है वही उनकी साहित्यिक भाषा भी है। उस समय तक खड़ी बोली और ब्रजभाषा के रूप में इस भाषा का विभाजन नही हुआ था फिर भी उनकी खड़ी में हम ब्रजभाषा का पुट साफ देख सकते हैं। उनकी पहेलियां ब्रजभाषा और खड़ी बोली की मिली जुली जबान में लिखी गयी कृतियां हैं। अपनी इस भाषा के शब्दों का प्रयोग खुसरो अपनी फारसी रचनाओं में भी करते हैं। दिल्ली के आसपास बोली जाने वाली उनकी यही अपनी भाषा बाद में दक्षिण, पूर्व और पश्चिम में फैलकर आगे चलकर हिंदी के रूप में एक व्यापक रूप से प्रचारित प्रसारित और स्वीकृत मानक भाषा बनी जिसे आज भी भारतीय राजभाषा का दर्जा प्राप्त है।

खुसरो ने जहां खड़ी बोली को साहित्यिक भाषा का रूप दिया तो वे वहीं ब्रजभाषा का भी प्रयोग अपनी रचनाओं में करते हैं। उनके इस भाषाई मेल को हम उनकी पहेलियों, निस्बतों और सुखनों में देख सकते हैं। कर्ता के ना ने का प्रयोग करते हुए उन्होंने इस भाषा को नई पहचान और नया रूप दिया।

खुसरो ने इसी भाषा का जिक्र अपने भाषाई सर्वेक्षण में किया है और लोक जीवन में प्रचलित और उपलब्ध लिखित उनकी रचनाएं सिद्ध करती हैं कि यही उनकी भाषा थी। उस समय काव्य के लिए ब्रजभाषा का ही अधिक चलन था परंतु खुसरो ने अपनी रचनाओं में खडी बोली का उपयोग किया और दोनों के इस मेल से नई विकसित भाषा को हिंदवी और बाद में हिंदी के रूप में पहचान मिली।

खुसरो की भारतीयता : आज बेशक कछ राजनीतिक निहितार्थों के कारण अथवा उनकी आस्थाओं के कारण खुसरो को बाहरी बताया जा सकता है अथवा उन्हें विस्मृत करने की साजिश की जा सकती है। खुसरो की लोकजीवन में बिखरी रचनाएं और उनका उपलब्ध साहित्य उनके अपने हिदुस्तानी होने पर गर्व करने और उस मिट्टी जिसमें उनका जन्म हुआ और जिसमें उनके पुरखों और आने वाली नस्लों की रूह की गंध मिली है, से अथाह प्रेम को रेखांकित करती है। उन्होंने हिंदुस्तान की जलवायु से लेकर यहां के फूलों, फलों और इंसानों के सांवले रंग की ही तारीफ में कविता नही लिखी है बल्कि खुसरो ने हिंदुस्तान को धरती का स्वर्ग तक कहा है।

'किश्वरे हिन्द अस्त बहिश्ते बज़मीं'

माने हिंद धरती पर स्वर्ग है। वे ऐसे देशभक्त थे जो ना अपना ईमान भूलता है और ना ही अपनी देशभक्ति बल्कि अपनी देशभक्ति को अपना ईमान मानते थे :

दीं ज़ रसूल आमदाहे काई ज़ मरा दीन
हुब्बेवतन हस्तज़ ईमां बयकीन।

जिसका अर्थ है कि रसूल फरमाते हैं कि देश से प्रेम करना

ईमान का ही एक भाग है। इसीलिए भी वे अपने देश से बेहद प्रेम करते हैं। उन्होंने अपने सबसे अधिक चर्चित एवं महत्वपूर्ण ग्रंथ नूह सिपहर का एक पूरा अध्याय ही अपने हिंद की तारीफ में लिख डाला था। इसके लिए उन्होंने लगभग 112 शेर लिखे। उन्होंने हिंद के पशुओं, पक्षियों से लेकर हवा, पानी, शहर, जंगल और औरतों व मर्दो की भरपूर तारीफ अपनी रचनाओं में की है।

हिंद को धरती के स्वर्ग का दर्जा : उन्होंने अपने देश की धरती का स्वर्ग बताने के लिए सात दलीलें पेश की—

1. अव्वलिश इनस्त कि आदम व जिना
   चूं ज़ असी खुनगई याफ्त चुनां।

वे कहते हैं कि हजरत आदम यहां जन्नत से आये थे और उन्होंने इस धरती की स्वर्गिक विशेषताओं के कारण इस जगह को चुना था।

2. गर न बहिश्त अस्त हमीं हिंद चिरा
   अज़पये ताउस जनां गश्त सरा।

इस देश में मोर जैसा पक्षी पाया जाता है। यदि यह जन्नत नहीं होती तो जन्नत का पक्षी मोर यहां कैसे होता। (याद रहे मोर 1963 में राष्ट्रीय पक्षी बना है और खुसरो पहले से इसके महत्व को समझ रहे थे।)

3. हुज्जत ईनस्त सुय्यम गर शके
   कामदन मार ज़ बाग़े फ़लकी।

अर्थात तुझे अभी भी शक है तो एक दलील यह है कि यहां सांप भी बागे फलक (आसमान) अर्थात स्वर्ग से आया है।

4. हुज्जते चाहरूम मगर इनस्त कि चूं
   जद कदम आदम ज़ हद हिंद बरू ।

चौथी दलील यह है कि हजरत आदम हिंद से बाहर निकले तो स्वर्ग की इन चीजों से वंचित हो गये।

5. हिंद हमा साल कि गुलरूये बुवद
   जी बूद व गुल हमा खुशबू बुवद।

इसका अर्थ है कि हिंदुस्तान की सरजमीं फूलों और उनकी खुशबू से हमेशा महकती है।

6. बस हमा हाल ज़खूबी बबिही
   हिंद बहिश्त अरूत बा सबात रही।

अर्थात हिंद अपनी कुदरती चीजों के कारण बेहद समृद्ध है जो स्वर्ग से भी बढ़कर है।

7. गर्च कि बर निस्बते फिरदोसि निहां
   बा हम लुत्फीश चूं जिंदा अस्त जहां।

सातवां तर्क यह है कि मुसलमान सारी दुनिया को कैदखाना समझते हैं मगर हिंद में जो हवा चलती है उससे यह जगह उनके लिए खुल्दे-बरी (स्वर्ग) बन गई है।

खुसरो इन सात दलीलों पर ही नही ठहरते हैं। वे 10 और सबूत देकर यह सिद्ध करने की कोशिश करते हैं कि हिंद से बढ़िया और खूबसूरत जगह दुनिया में कहीं नही हैं और मेरा देश हरेक मामले में दुनिया में सबसे शानदार है। वे रोम और यूनान के दर्शन का हवाला देकर बताते हैं कि मेरा हिंद उनसे किसी भी मामले में कम नही हैं। यह तो विद्या का केन्द्र है। वे कहते हैं कि हिंद के लोग दुनिया की कोई भी भाषा सीखकर उसका शुद्ध उच्चारण कर सकते हैं परंतु विदेशी लोग हिंद की भाषा का शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकते हैं। वे शून्य के अविष्कार की दुनिया को याद दिलाते हैं। यहां तक कि शतरंज का अविष्कार भी यहीं हुआ। पचतंत्र को वे दुनिया की सबसे पुरानी किताबों में से एक बताते हैं। हिंद के लोग गणित के बड़े ज्ञानी हैं। सरोद भारत में बजाया जाता है और इसके जैसा कोई दूसरा वाद्ययंत्र दुनिया में दूसरा नहीं है।

खुसरो यहां के फलों की तारीफ करते नहीं अघाते हैं। वे कहते हैं कि हिंद मे दो फल ऐसे हैं जो कहीं नहीं पाये जाते हैं। एक फल मौज (केला) और दूसरा पान जिसे लोग फल की तरह ही खाते हैं। वे फलों के राजा आम की बड़ी तारीफ करते हैं और जो लोग अंजीर को आम से अच्छा बताते हैं उन्हें लानत भेजते हुए कहते हैं कि जो अंजीर को आम से अच्छा बताते हैं वे उस अंधी औरत की तरह हैं जो बसरे को शाम से अच्छा मानती है। उन्होंने खरबूजे और कंद की भी काफी तारीफ की। खुसरो भारत के निवासियों के श्याम वर्ण की भी तारीफ करते हैं और कहते हैं कि इसके सामने उन्हें कोई खूबसूरती पसंद नहीं है। वे भारत की जलवायु और सौंदर्य की भरपूर तारीफ करते हुए उसे ही तरजीह देते हैं और कहते हैं :

तरजीह मुल्के हिंद व अक्लज हवाएं खुश
बररूमी, बर ईराको-खुरासानो-कन्दहार।

इसका अर्थ है कि भारत की जलवायु, इराक, खुरासान और कंधार से भी बेहतर है और मैं इन सभी देशों पर तरजीह देता हूं। खुसरो ने अपना ज्यादतर वक्त दिल्ली में गुजारा था और इस शहर से उन्हें बेहद लगाव था। खुसरो इसे बगदाद, मिस्र खुरासान, तबरेज, बुखारा और दूसरे सभी शहरों पर तरजीह देते थे। वे दिल्ली के बारे में अपनी मसनवी किरानुस्सरदैन में इसे अदन की जन्नत बताते हैं। खुसरो दिल्ली की विशेषताओं की वजह से इसे बागे अरम (जन्नत का बाग) की तरह समझते हैं।

हजरते देहली कनपके दीन व दान
जन्नते अदन अस्त कि आबाद बाद
गर शनूद किस्सा ई बोस्तां
मक्का शवद तायफे हिंदोस्तां।

अर्थात इस बाग का किस्सा सनकर मक्का भी हिंदुस्तान का तवाफ अर्थात परिक्रमा करने लगा है। इस प्रकार वे इसे अरब के धार्मिक शहर मक्का पर भी तरजीह देते हैं। उन्होंने दिल्ली के किले की तारीफ की और कुतुबमीनार के बारे में तो उन्होंने लिख दिया कि इसे देखकर चांद ने अपनी टोपी ही उतारकर फेंक दी है।

दिल्ली के पानी की तारीफ करते हुए वे कहते हैं कि इस शहर का पानी कोई पी ले तो खुरासान का पानी ना पीना चाहेगा। यहां के फलों की वे तारीफ करते हैं और खरबूजे को कहते हैं कि वो यहां इतना मिठास भरा होता है कि मानो जन्नत का फल हो।

खुसरो ना केवल एक सच्चे हिंदुस्तानी थे बल्कि वो हमारी आज की मिली जुली हिंदुस्तानी तहजीब का वो पत्थर हैं कि जिसे इस तहजीब की नींव से हटा लिया जाये तो हमारी तहजीब की इमारत ना केवल भरभरा कर ढह जायेगी बल्कि विभिन्न रंगों से सजी हमारी सांस्कृतिक विरासत का यह बाग बरुह, बंजर और शुष्क रेगिस्तान से ज्यादा कुछ भी नजर नही आयेगा। ना वो लोकगीत होंगे जिनकी जमीन खुसरों ने तैयार की है ना वो वाद्ययंत्र होंगे जिन पर हमारे संगीतकार फक्र से नई-नई धुने बनाते हैं और ना वो ढोलक की थाप होंगी जो हमारे शादी विवाहों के संगीत को जीवंत बनाते हैं। सोचिए, खुसरो ना होते तो हमारे पास कव्वाली ना होती, हम गजल से महरूम रह सकते थे और उनके बगैर ख्याल गायकी का ख्याल भी मुश्किल ही था और सबसे प्रमुख बात हमारी राजभाषा शायद हिंदी ना होती और हमारी बोली में वो मिठास ना होती जो आज है और सबसे बड़ी और प्रमुख बात हिंदी, हिंदू और हिंदुस्तान के नारे की राजनीति को हिंदी को अपने भाषा कहने और दुनिया को बरगलाने का मौका नहीं मिला होता।

खुसरो 27 सितंबर 1325 को दुनिया से विदा हो गये। दुनिया से उनकी विदाई भी अपने गुरू के लिए शिष्य के प्रेम की अनूठी मिसाल बनकर रह गई। खुसरो गयासुद्दीन के साथ बंगाल लड़ाई के मोर्चे पर गये थे। खुसरो बंगाल से लौटते हुए तिरहुत में ठहर गये। निजामुद्दीन औलिया ने अपने प्रियतम शिष्य को याद किया और नसीरूद्दीन महमूद (चिराग दिल्ली) को अपना वारिस बनाकर दुनिया से चल बसे। अमीर खुसरो के दिल्ली लौटने पर उन्हें इस खबर से बड़ा सदमा लगा। उन्होंने अपने कपड़े फाड़ डाले और मुंह पर कालिख पोत ली और कहा कि सूरज धरती के नीचे छुप जाये और खुसरो जिंदा रहे और खूब रोए और ये दोहा कहा—

गौरी सोवे सेज पर मुख पर डाले केस,
चल खुसरो घर आपने रैन भई चहुंदेस।

वो अपनी सारी दौलत लुटाकर निजामुद्दीन औलिया की कब्र पर झाड़ू देने लगे और छह महीने बाद अपने गुरू की याद में तड़प-तड़पकर उन्होंने भी अपने प्राण गंवा दिये। खुसरो नहीं रहे परंतु आज भी खुसरो हमारी भाषा हिंदी, उसमें लिखी गई उनकी पहेलियों, निस्बतों ढकासलों, गजलों, कव्वालियों और कभी भी खत्म नही होने वाले हिंदुस्तानी संगीत की शकल में हमारी संस्कृति के मजबूत और अटूट स्तंभ के रूप में हमारे जीवन का हिस्सा हैं।

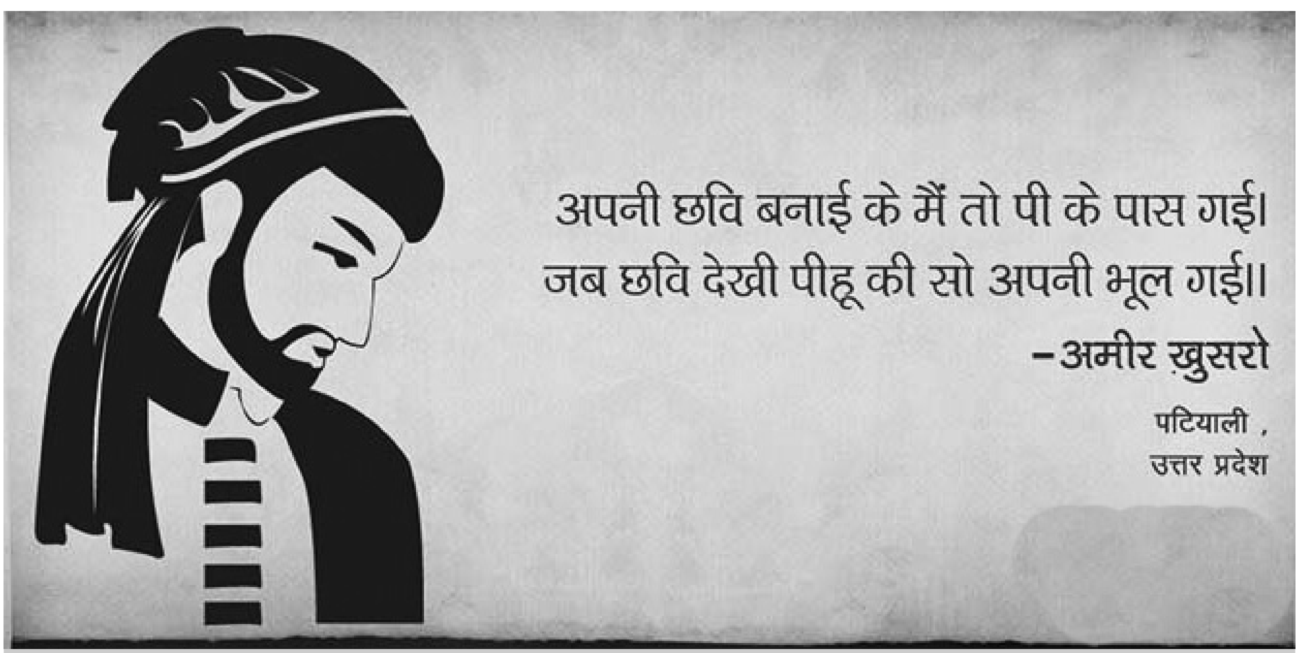

इंस्टीट्यूट फॉर सोशल डेमोक्रेसी

फ्लैट नम्बर-110, नम्बरदार हाउस, 62-ए, लक्ष्मी मार्केट, मुनिरका, नई दिल्ली-110067, भारत, टेलीफोन : 091-26177904, टेलीफैक्स : 091-26177904

ई-मेल : notowar.isd@gmail.com / वेबसाइट : www.isd.net.in / www.sach.org.in

केवल सीमित वितरण के लिए

मुद्रण : डिजाइन एण्ड डाइमेन्शंस, एल-5 ए, शेख सराय, फेज-II, नई दिल्ली-110017